प्रौढ़ शिक्षा

नवम्बर 2011
वर्ष 56 अंक-4

सम्पादक मण्डल

प्रो. भवानीशंकर गर्ग

ए.एच.खान
डा. एल.राजा
डा. मदन सिंह
ए.एल.भार्गव
इन्दिरा पुरोहित
दुर्लभ चेतिया
मृणाल पंत
के.आर.सुशीले गौडा
प्रफुल्ल नागर

सहायक सम्पादक
बी. संजय

पत्रिका में व्यक्त लेखकों के विचार उनके वैयक्तिक विचार हैं जिनके लिए संघ एवं सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं है ।

मूल्य : 100 रूपये वार्षिक

इस अंक में

सम्पादकीय

सर्व शिक्षा अभियान का मूल्यांकन, प्रतिक्रियाओं के आधार पर
– हंसराज पाल
– मोहनलाल ठाकुर 4

महायोगी श्री अरविन्द के शिक्षा–दर्शन की प्रासंगिकता
– अनूपी समैया 12

प्रौढ़ शिक्षा एवं राष्ट्र निर्माण
– लक्ष्मण शिंदे
– महेन्द्र पाटीदार 18

महिला सशक्तीकरण : शिक्षक का दायित्व
– हरीश चन्द्र चौबीसा 26

साक्षर भारत आया
–जय सिंह 31

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षा की अवधारणा
–कृष्णकांत
–रधुवीर सिंह 32

वृद्धावस्था में भी रहें चुस्त दुरूस्त
–राजीव गुप्ता 38

हमारे लेखक 40

सम्पादकीय

जरूरत है बाल पंचायत एवं बाल सभाओं की

मानव सभ्यता व संस्कृति के विकास में शासन व्यवस्था की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यही कारण है कि सदियों से संसार भर में बेहतर शासन व्यवस्था विकसित करने हेतु नवीन प्रयोग और शोधकार्य होते रहे हैं। इस अनवरत यात्रा के कारण ही मनुष्य आदिम युग से निकल उतरोत्तर विकास करता हुआ आधुनिक युग की समृद्धि और सफलता भरे पड़ाव को प्राप्त कर सका है। शासन व्यवस्था के नजरिए से देखें तो कबीलायी दौर से आगे बढ़, राजतंत्र और सैनिक शासन के विभिन्न प्रकारों से गुजरता हुआ आज वह प्रजातंत्र के दौर में है। इस प्रजातंत्र के दौर में भी वह समाज के न्यूनतम इकाई के सशक्तीकरण और समृद्धि हेतु लगातार नवीन प्रयोगकर कर रहा है।

सन् 1992 में फ्रांसीस फूकूयामा की प्रसिद्ध पुस्तक 'द एण्ड ऑफ हिस्ट्री एण्ड द लास्ट मैन' प्रकाशित हुई। फूकूयामा ने विशद शोध पर आधारित अपनी इस पुस्तक के माध्यम से यह प्रतिपादित करने की कोशिश की कि बेहतर शासन व्यवस्था की खोज की दिशा में मनुष्य द्वारा किया जा रहा प्रयास वस्तुतः पश्चिम के उदारवादी लोकतंत्र की खोज के साथ समाप्त हो जाती है। अर्थात शासन व्यवस्था के कारण मनुष्य को अपनी विकास में जो भी सहूलियतें प्राप्त होनी चाहिए उदारवादी लोकतंत्र उसे उपलब्ध कराने में पूर्णत्या सक्षम है। यदि कहीं लोकतंत्र है और वहां के लोगों को अपेक्षित सुविधांए प्राप्त नहीं हो रही हैं तो इसका कारण लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में कोई कमी है ऐसा नहीं है। वस्तुतः यह उन लोगों की व्यक्तिगत अथवा सामूहिक खामियां हैं जो भिन्न स्तरों पर इसके क्रियान्वयन में लगे हैं।

हमारा देश दुनियां का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है जहां विगत 64 वर्षों में लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था का सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। इसलिए निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि लोकतंत्र यहां सफल रहा है। पर दूसरी ओर देखें तो हम पाते हैं कि देश की एक विशाल आबादी अभी भी जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को प्राप्त करने के लिए जूझ रही है। फूकूयामा के प्रतिपादन के मद्देनज़र देखें तो इन सब के लिए देश के प्रशासन में लगा मानव संसाधन जिम्मेवार नज़र आता है।

द टाइम्स ऑफ इण्डिया के सहायक सम्पादक जग सुरैया देश के माने जाने पत्रकार हैं। हाल ही में प्रकाशित अपने एक स्तम्भ में उन्होंने परोक्ष रूप से यह कहा है कि शिक्षित उच्च

व मध्यम वर्ग के लोगों में राजनीति और प्रशासन के प्रति वर्तमान नकारात्मक वातावरण ही इसके लिए दोषी है। जग सुरैया राजनीति व प्रशासनिक सुधारों को उपरोक्त वर्गों में पुनः चर्चा का विषय बना देने के लिए देश में चल रहे मौजूदा लोकतांत्रिक आंदोलनों को बधाई का पात्र मानते हैं।

बहरहाल, जमीनी सच्चाईयों पर गौर करें तो हम पाते हैं कि देश में लोकतंत्र की जड़े क्रमशः मजबूत हो रही हैं। सूचना के अधिकार अधिनियम 2005 तथा महात्मा गांधी ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (नरेगा) के कारण लोकतंत्र एवं लोक सशक्तीकरण को और भी बल मिला है। स्वाधीनता के बाद लोकतंत्र के जड़ों को मजबूत करने का जो कार्य सन् 1992 में पारित 73वें सविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से शुरू हुआ था वह उत्तरोत्तर सबल हो जा रहा है। पंचायती राज अधिनियम और महिलाओं को इसके तहत प्रदत आरक्षण के कारण लोक सशक्तीकरण के कार्य को भी काफी हद तक अमलीजामा पहनाया जा सका है।

इन सब के बावजूद भारतीय सामाजिक जीवन में यदि कहीं लोकतांत्रिक सोच की कमी महसूस होती है तो इसका कारण सम्भवतः हमारी भावी पीढ़ी में लोकतांत्रिक शिक्षण का अभाव है। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार के सचिव श्री डी. के. सिकरी ने गत 15 नवम्बर, 2011 को दिल्ली हाट में आयोजित वातसल्य मेले में इस आशय से अत्यंत उपयोगी सुझाव देश के समक्ष रखा है। श्री सिकरी ने कहा है कि ग्रामीण क्षेत्रों में बालकों के सशक्तीकरण के लिए आवश्यक है कि सभी गांवों में बाल पंचायत एवं बाल सभाओं का गठन किया जाय। शहरी क्षेत्रों में बाल संसद एवं युवा संसद के प्रयोग को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने के साथ यदि ग्रामीण क्षेत्रों में बाल सभा एवं बाल पंचायतों का क्रियान्वयन किया गया तो बाल अधिकारों के संरक्षण में बालक बालिकाओं की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जा सकेगी। साथ ही देश की भावी पीढ़ी के लोकतांत्रिक सोच को भी परिपक्व बनाया जा सकेगा।

– बी संजय

सर्वशिक्षा अभियान के प्रति, विद्यार्थियों के माता–पिता की प्रतिक्रियाओं के आधार पर सर्वशिक्षा अभियान का मूल्यांकन

हंसराज पाल
मोहनलाल ठाकुर

सन् 1994 में प्रारम्भ किये गये जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डी.पी.ई.पी.) के अधूरे लक्ष्यों को पूर्ण करने के उद्देश्य से केन्द्र सरकार ने वर्ष 2002–03 में ''सर्व शिक्षा अभियान'' की शुरूआत की। सर्वशिक्षा अभियान शासन के द्वारा प्रारम्भ की गई एक ऐसी योजना है जिसमें शिक्षा से संबंधित कई योजनाओं जैसे– ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड, अध्यापक शिक्षा का सुदृढ़ीकरण, प्राथमिक शिक्षा के लिए सर्व पोषाहार सहायता कार्यक्रम, महिला समाख्या, शिक्षा गारंटी योजना, वैकल्पिक नवाचारी शिक्षा, जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम, लोक जुम्बिश परियोजना आदि का समन्वय किया गया है।

सर्वशिक्षा अभियान के उद्देश्यों में मुख्य रूप से विद्यालयों में विद्यार्थियों की दर्ज संख्या में वृद्धि करना, विरतता को कम करना, विद्यार्थियों की उपस्थिति में बढ़ोतरी करना तथा बालक एवं बालिकाओं में लैंगिक असमानताएँ दूर करना आदि शामिल हैं। संदर्भ साहित्य के अवलोकन से हमें यह ज्ञात होता है कि सर्वशिक्षा अभियान के प्रारम्भ होने के पूर्व से चली आ रही विभिन्न योजनाओं की कमियों, योजनाओं के क्रियान्वयन में आने वाली कठिनाइयों, इन योजनाओं की सफलता में आने वाली कठिनाइयों तथा इन योजनाओं की सफलता का पता लगाने के लिए शोधकों के द्वारा समय–समय पर कई शोध कार्य किये गये हैं। इनसे सम्बन्धित शोध अग्रलिखित हैं :

सिंह (1970) ने दो भारतीय गाँवों में साक्षरता का अध्ययन किया, चिकेरमाने (1979) ने विद्यालय से बाहर के बच्चों के लिये प्राथमिक औपचारिक शिक्षा कार्यक्रम का अध्ययन किया, नटराजन (1981) ने गिरियक ब्लॉक (पटना) के प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का मूल्यांकन किया, दवे (1981) ने राजस्थान में औपचारिकेतर शिक्षा के क्रियान्वयन की स्थिति का सर्वेक्षण, देसाई पटेल एवं शाह (1982) ने गुजरात राज्य के प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का अध्ययन, गुप्ता (1983) ने मध्यप्रदेश राज्य में विभिन्न संस्थाओं के द्वारा संचालित औपचारिकेतर शिक्षा कार्यक्रम (उम्र समूह 09 से 10 वर्ष) का आलोचनात्मक अध्ययन, औलख (1983) ने राजस्थान में औपचारिकेतर शिक्षा कार्यक्रम मूल्यांकन की व्यूह रचना का विकास, गांगुली (1984) ने विश्वविद्यालयों के द्वारा प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का अध्ययन, त्रिवेदी (1984) ने प्रौढ़ शिक्षा में विरतता का अध्ययन, पाती (1984) ने नवसाक्षरों की पठन आवश्यकताओं एवं रुचि का विश्लेषण, निम्बालकर (1985) ने गोवा में चल रहे प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का मूल्यांकन, खजूरिया एवं राही (1985) ने कुरूक्षेत्र में क्रियान्वित प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का मूल्यांकन, राज्य लक्ष्मी (1986) ने

09–14 वर्ष की उम्र के बच्चों के लिये औपचारिकेतर शिक्षा के कुछ पहलुओं का मूल्यांकन, पोद्दार (1986) ने औपचारिकेतर प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों का पर्यवेक्षण एवं प्रशासन तथा प्रौढ़ शिक्षा का मूल्यांकन, पुन्तुलु (1986) ने 09–14 उम्र समूह के औपचारिकेतर शिक्षा के शैक्षणिक पहलुओं का मूल्यांकन, मूर्ति (1986) ने आंध्रप्रदेश के प्राथमिक अवस्था के औपचारिकेतर शिक्षा केन्द्रों का प्रशासनिक दृष्टिकोण से मूल्यांकन, यादव (1987) ने उत्तर प्रदेश में 09–14 वर्ष की उम्र के बच्चों के लिये औपचारिकेतर शिक्षा कार्यक्रम का अध्ययन इत्यादि शोध कार्य किये। उपरोक्त शोध अध्ययनों से यह विदित होता है कि शिक्षा के विविध क्षेत्रों में हुए शोध अध्ययनों में सर्वशिक्षा अभियान के प्रति, विद्यार्थियों के माता–पिता की प्रतिक्रियाओं के आकलन पर कोई शोध कार्य पूर्व में नहीं किया गया है। अतः सर्वशिक्षा अभियान के प्रति विद्यार्थियों के माता–पिता की राय जानने के लिये प्रस्तुत अध्ययन ''सर्वशिक्षा अभियान के प्रति, विद्यार्थियों के माता–पिता की प्रतिक्रियाओं के आधार पर सर्वशिक्षा अभियान का मूल्यांकन'' की आवश्यकता प्रतिपादित होती है।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य – सर्वशिक्षा अभियान के प्रति, विद्यार्थियों के माता–पिता की प्रतिक्रियाओं के आधार पर सर्वशिक्षा अभियान का मूल्यांकन करना था।

न्यादर्श

प्रस्तुत अध्ययन हेतु खण्डवा जिले के 7 विकासखण्डों के 110 प्राथमिक विद्यालयों में से प्रत्येक विद्यालय से 5 विद्यार्थियों के माता–पिता का चयन सर्वशिक्षा अभियान के प्रति उनकी प्रतिक्रियाओं के आकलन हेतु किया गया। इस प्रकार कुल 1100 माता–पिता का चयन स्तरीकृत दैव न्यादर्श के रूप में किया गया। इसे तालिका 1.1 में दर्शाया गया है।

तालिका 1.1: खण्डवा जिले के 7 विकासखण्डों की कुल प्राथमिक, शालाओं की संख्या, न्यादर्श के रूप में चयनित प्राथमिकशालाओं की संख्या, न्यादर्श के रूप में चयनित माता–पिता की संख्या को दर्शाती तालिका

क्र.	खण्डवा जिले के विकासखण्डों के नाम	प्राथमिक विद्यालयों की कुल संख्या	चयनित प्राथमिक विद्यालयों की संख्या	न्यादर्श का प्रकार	प्रत्येक विद्यालय से चयनित विद्यार्थियों के माता–पिता की संख्या	प्रत्येक विद्यालय से चयनित विद्यार्थियों के माता–पिता की कुल संख्या
1.	खण्डवा	167	17	दैव	10	170
2.	पुनासा	194	20	दैव	10	200
3.	छैगाँवमाखन	128	13	दैव	10	130
4.	पंधाना	211	21	दैव	10	210
5.	हरसूद	104	11	दैव	10	110
6.	खालवा	220	22	दैव	10	220
7.	किल्लौद (बलड़ी)	54	06	दैव	10	60

स्रोत : सर्वशिक्षा अभियान केन्द्रीय कार्यालय खण्डवा, मध्य प्रदेश

उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन सर्वशिक्षा अभियान के प्रति विद्यार्थियों के माता–पिता की प्रतिक्रियाओं के आधार पर सर्वशिक्षा अभियान का मूल्यांकन, में प्राथमिक कक्षा के विद्यार्थियों के माता–पिता की प्रतिक्रियाओं के आकलन हेतु शोधकों के द्वारा सर्वशिक्षा अभियान प्रतिक्रिया मापनी का विकास किया गया। सर्वशिक्षा प्रतिक्रिया मापनी में सर्वशिक्षा अभियान के विभिन्न पहलुओं जैसे– सर्वशिक्षा अभियान की उपयोगिता, प्राथमिक विद्यालयों में संसाधनों की उपलब्धता, मध्याह्न भोजन, पालक–शिक्षक संघ, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के बच्चों की शिक्षा, पिछड़े बच्चों की शिक्षा, बालिका शिक्षा, कम्प्यूटर शिक्षा आदि से सम्बन्धित कथन थे जिनमें प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करने हेतु कुछ विकल्प दिये गये थे। ये विकल्प इस प्रकार थे–पूर्णतः सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत, पूर्णतः असहमत। सकारात्मक कथनों के लिये अंकभार 5,4,3,2,1 तथा नकारात्मक कथनों के लिये अंकभार 1,2,3,4,5 था। प्रतिक्रिया मापनी में प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करने के लिये कोई समय सीमा नहीं थी।

प्रदत्त संकलन

प्रस्तुत अध्ययन में प्रदत्त संकलन हेतु सर्वप्रथम खण्डवा जिले के सर्वशिक्षा अभियान के केन्द्रीय कार्यालय प्रकोष्ठ में जाकर सर्वशिक्षा अभियान कार्यक्रम के जिला परियोजना समन्वयक से संपर्क कर उन्हें अपने शोध कार्य का उद्देश्य बताकर उनसे प्रदत्त संकलन की अनुमति ली गई। इसके पश्चात् न्यादर्श के रूप में चयनित विद्यालयों में से प्रत्येक विद्यालय जाकर सम्बन्धित शिक्षकों से उस विद्यालय में अध्ययनरत 5 विद्यार्थियों के माता–पिता के नाम एवं पतों की सूची प्राप्त की गई ताकि उन लोगों से सम्पर्क स्थापित करने में सहायता मिल सके।

न्यादर्श के रूप में चयनित विद्यार्थियों के माता–पिता से उनके घर जाकर सम्पर्क स्थापित किया गया। उन्हें अपना परिचय देकर अपने शोध कार्य के उद्देश्य से अवगत कराया गया । साथ ही उन्हें इस बात के लिए आश्वस्त किया गया कि उनके द्वारा दी जाने वाली जानकारियों को गोपनीय रखा जायेगा ताकि वे अपने विचार निर्भीक होकर दे सकें। इसके बाद उनसे उनकी शैक्षिक पृष्ठभूमि की जानकारी ली गई कि वे साक्षर हैं या निरक्षर हैं। इसके पश्चात् उनसे सर्व शिक्षा अभियान प्रतिक्रिया मापनी भरवाई गई। निरक्षर माता–पिता से साक्षात्कार के माध्यम से सर्वशिक्षा अभियान प्रतिक्रिया मापनी भरवाई गई।

प्रदत्त विश्लेषण

प्रदत्त विश्लेषण हेतु आवृत्ति एवं प्रतिशत का उपयोग किया गया।

परिणाम एवं विवेचना

प्रस्तुत शोध **''सर्वशिक्षा अभियान के प्रति, विद्यार्थियों के माता–पिता की प्रतिक्रियाओं के आधार पर सर्वशिक्षा अभियान का मूल्यांकन''** में इस शोध के उद्देश्य 'सर्वशिक्षा अभियान प्रतिक्रिया मापनी के प्रति, विद्यार्थियों के माता–पिता की प्रतिक्रियाओं के आधार पर सर्वशिक्षा अभियान का अध्ययन करना' का आकलन करने के लिए सर्वशिक्षा अभियान के अन्तर्गत अध्ययनरत, प्राथमिक कक्षा के विद्यार्थियों के माता–पिता की सर्वशिक्षा अभियान के प्रति, प्रतिक्रियाओं को जानने के लिए (सर्वशिक्षा अभियान प्रतिक्रियाओं को) सर्वशिक्षा अभियान प्रतिक्रिया मापनी के द्वारा प्रदत्तों को एकत्रित किया गया है। इस हेतु खण्डवा जिले के 7 विकासखण्डों के 110 प्राथमिक विद्यालयों में से प्रत्येक विद्यालय से वहाँ अध्ययनरत 5 विद्यार्थियों के माता–पिता का चयन सर्वशिक्षा अभियान के प्रति उनकी प्रतिक्रियाओं को जानने के लिए किया गया है। सर्वशिक्षा अभियान प्रतिक्रिया मापनी तथा इससे सम्बन्धित परिणाम प्रस्तुत कर विवेचना की गई है।

सर्वशिक्षा अभियान प्रतिक्रिया मापनी

क्र.	कथन	पूर्णतः सहमत	सहमत	अनिश्चित	असहमत	पूर्णतः असहमत	माध्य फलांक
1.	सर्वशिक्षा अभियान के कारण विद्यार्थी आसानी से सीखते हैं।	405	475	97	68	55	4.00
2.	सर्वशिक्षा अभियान में विकलांग बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है।	283	267	328	144	78	3.48
3.	सर्वशिक्षा अभियान के लागू होने के बाद विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ी है।	332	262	237	147	122	3.48
4.	सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत विद्यार्थियों को दी जाने वाली किताबें काम की नहीं होती हैं।	63	77	128	442	390	3.92
5.	सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत प्रत्येक बस्ती के 1 कि.मी. के भीतर वैकल्पिक विद्यालय की स्थापना की गई है।	208	263	364	167	98	3.28
6.	सर्वशिक्षा अभियान के विषय में विद्यार्थियों के माता–पिता को जानकारी दी जाती है।	367	385	193	87	68	3.81
7.	सर्वशिक्षा अभियान के लागू होने के बाद विद्यालयों में अध्यापकों की संख्या बढ़ी है।	271	226	283	167	153	3.26
8.	सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के सभी विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है।	389	317	242	88	64	3.79

9.	सर्वशिक्षा अभियान में पिछड़ी जाति के बच्चों पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है।	94	131	283	368	229	3.45
10.	सर्वशिक्षा अभियान के लागू होने से अनुसूचित जाति के बच्चों की विद्यालय जाने में रुचि बढ़ी है।	267	324	197	189	123	3.38
11.	सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत ग्राम शिक्षा समितियों का गठन नहीं किया गया है।	131	163	312	251	243	3.28
12.	आपके बच्चे नियमित रूप से विद्यालय जाते हैं।	593	378	63	37	29	4.33
13.	विद्यालयों में वर्तमान में बिजली, पानी, शौचालयों आदि की पर्याप्त सुविधा नहीं है।	164	207	282	228	219	3.11
14.	सर्वशिक्षा अभियान एक उपयोगी कार्यक्रम है।	327	374	192	112	95	3.66
15.	सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत विद्यालयों में परामर्श केन्द्र की स्थापना नहीं की गई है।	186	158	397	234	175	3.14
16.	विद्यालयों में खेलकूद एवं मॉ–बेटी सम्मेलनों का आयोजन किया जाता है।	245	327	262	147	119	3.39
17.	सर्वशिक्षा अभियान से कोई फायदा नहीं है।	87	124	217	358	314	3.62
18.	सर्वशिक्षा अभियान का उद्देश्य सभी बच्चों को शिक्षा की मुख्य धारा में शामिल करना है।	473	387	133	65	42	4.07
19.	सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत विद्यार्थियों को चिकित्सीय सुविधाएँ उपलब्ध नहीं कराई जाती हैं।	137	196	323	263	181	3.14
20.	आज माता–पिता एवं अध्यापकों में सहयोग नहीं है।	187	173	298	263	179	3.06
21.	सर्वशिक्षा अभियान के प्रारम्भ होने से शिक्षक अपने अध्यापन पर ध्यान नहीं दे पाते हैं।	371	254	238	167	124	2.57
22.	सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत अध्ययनरत् विद्यार्थियों का पारिवारिक सर्वेक्षण नहीं किया जाता है।	142	157	378	226	197	3.16
23.	सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत लड़के एवं लड़कियों के बीच में शिक्षा से संबंधित अन्तर को कम करने के लिये कोई उपाय नहीं किये गये हैं।	153	168	306	277	196	3.17

24.	सर्वशिक्षा अभियान के प्रारम्भ होने से विद्यार्थियों ने बीच में विद्यालय छोड़ना कम कर दिया है।	337	263	258	133	109	3.53
25.	सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत शहरी/ग्रामीण, मलिन बस्ती स्तर पर शैक्षणिक कार्यक्रमों का आयोजन नहीं किया जाता है।	92	137	318	305	248	3.43
26.	विद्यालय में विद्यार्थियों को पर्याप्त भोजन नहीं मिलता है।	213	172	236	295	184	3.06
27.	सर्वशिक्षा अभियान के प्रारम्भ होने से आपके बच्चों की शिक्षा में सुधार हुआ है।	282	344	237	163	74	3.54
28.	विद्यालयों में पालक–शिक्षक संघ की बैठकें नियमित रूप से नहीं होती हैं।	143	134	327	285	211	3.26
29.	सर्वशिक्षा अभियान को चालू रखने की जरूरत है।	586	347	63	71	33	4.19
30.	सर्वशिक्षा अभियान में विद्यालय न जा सकने वाले बच्चों के लिए कोई विशेष उपाय नहीं किये गये हैं।	157	174	288	292	189	3.16
31.	सर्वशिक्षा अभियान में लड़के एवं लड़कियों दोनों की ही शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है।	315	384	182	136	83	3.91
32.	सर्वशिक्षा अभियान में धार्मिक शिक्षा [illegible] मक्तवों एवं मदरसों में औपचारिक विद्यालयीन सुविधाएँ उपलब्ध नहीं कराई जाती हैं।	97	153	488	194	168	3.16
33.	सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत पुराने विद्यालय भवनों का नवीनीकरण किया गया है।	248	226	274	187	165	3.18
34.	सर्वशिक्षा अभियान ऐसे विद्यार्थियों जो कि शैक्षिकरूप से पिछड़े हुए हैं या अनुतीर्ण हो गए हैं उनके लिए विशिष्ट कक्षाओं या शिविरों	341	287	268	122	82	3.62

तालिका से स्पष्ट है कि सर्वशिक्षा अभियान के प्रति विद्यार्थियों के माता–पिता की प्रतिक्रियाएँ सभी कथनों के प्रति सकारात्मक पायीं गयी।

न्यूनतम सकारात्मक प्रतिक्रियाएँ, सर्वशिक्षा अभियान के प्रारम्भ होने पर शिक्षकों का अपने अध्यापन पर ध्यान (2.57), भोजन की अच्छी गुणवत्ता (2.92), तथा भोजन की पर्याप्तता (3. 06), अधिकतम बच्चों की विद्यालयों में नियमितता (4.33), सर्वशिक्षा अभियान को चालू रखने (4.19) तथा सभी बच्चों को शिक्षा की मुख्य धारा में शामिल करना (4.07) जैसे विषयों पर पायीं गयी।

सर्व शिक्षा अभियान के प्रति विद्यार्थियों के माता–पिता की प्रतिक्रियाएँ सभी कथनों के प्रति सकारात्मक पायी गयी। न्यूनतम सकारात्मक प्रतिक्रियाएँ सर्वशिक्षा अभियान के प्रारम्भ होने पर शिक्षकों का अपने अध्यापन पर ध्यान (2.57), भोजन की अच्छी गुणवत्ता (2.92), भोजन की पर्याप्तता (3.06) से अधिकतम सकारात्मक प्रतिक्रियाएँ बच्चों की विद्यालयों में नियमितता (4.33), सर्वशिक्षा अभियान को चालू रखने (4.19) तथा सभी बच्चों को शिक्षा की मुख्य धारा में शामिल करना (4.07) जैसे विषयों पर पायी गयी।

इस प्रकार के परिणाम आने के कारण ये थे कि आजकल बच्चों के माता–पिता में बच्चों के अध्ययन के प्रति जागरूकता पायी गयी है। इसी कारण सर्वशिक्षा अभियान प्रतिक्रिया मापनी में दिये गये सभी कथनों के प्रति पालकों की प्रतिक्रियाएँ सकारात्मक पायी गयी। चूंकि विद्यालयों में शिक्षकों पर अध्यापन के अतिरिक्त अन्य कार्यों जैसे– पारिवारिक सर्वेक्षण, जनगणना, मतगणना, पल्स पोलियो टीकाकरण, राशन कार्ड, मतदाता परिचय पत्र, आदि भी करने पड़ते हैं इसलिए शिक्षकों के अध्यापन पर ध्यान के प्रति पालकों की न्यूनतम सकारात्मक प्रतिक्रियाएँ पायी गयी। इसी प्रकार शाला में विद्यार्थियों के लिये दिये जाने वाले मध्यान्ह भोजन हेतु शासन द्वारा स्वीकृत बजट काफी कम होता है जिससे बच्चों को विद्यालयों में अच्छी गुणवत्ता का भोजन न मिल पाना पाया गया, भोजन की मात्रा भी सभी बच्चों के लिए पर्याप्त न होना पाया गया जिससे इन कथनों के प्रति पालकों की न्यूनतम सकारात्मक प्रतिक्रियाएँ पायी गयी।

सर्वशिक्षा अभियान के प्रारम्भ होने से शासकीय विद्यालयीन शिक्षा में काफी गुणात्मक सुधार पाये जाने से पालक नियमित रूप से अपने बच्चों को विद्यालयों में भेजने लगे हैं। अतः विद्यालयों में बच्चों की नियमितता एवं उपस्थिति में वृद्धि का होना पाया गया है। सर्वशिक्षा अभियान की विभिन्न योजनाओं जैसे– गणवेश वितरण, मध्यान्ह भोजन वितरण, समय पर छात्रवृत्ति वितरण, विद्यालयों में पीने के पानी की व्यवस्था, बैठने के लिये फर्नीचर की व्यवस्था आदि के कारण अधिकांश पालकों की इसे चालू रखने के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया पायी गयी। इसी प्रकार सर्वशिक्षा अभियान में पिछड़ी जाति के बच्चों, विकलांग बच्चों तथा वंचित

वर्ग के बच्चों, बालिकाओं की शिक्षा पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है। इसलिये इसमें सभी बच्चों को शिक्षा की मुख्य धारा में शामिल करना भी पाया गया है। इसलिए इस कथन के प्रति भी पालकों की अधिकतम सकारात्मक प्रतिक्रियाएँ पायी गयी हैं।

संदर्भ

- अग्रवाल, यु.सी : सर्व शिक्षा अभियान वृहद् लक्ष्य–कमजोर प्रयास, भारतीय आधुनिक शिक्षा वर्ष 22, अंक 3, जनवरी 2004, पृष्ट 09–14
- अग्रवाल, बी.बी. : आधुनिक भारतीय शिक्षा और समस्याएँ, आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर, 1996
- भाटिया, के.के एवं चढ्ढा : आधुनिक भारतीय शिक्षा और समस्याऍं, लुधियाना : प्रकाश ब्रदर्स 1980.
- सिंह, नरेन्द्र कुमार : प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन, प्राथमिक शिक्षक, वर्ष 29, अंक–1, जनवरी 2004, पृष्ट 14–19.

References:

- Buch, M.B. (ed) A Survey of Research in Education. Baroda : Centre of Advanced Study in Education 1974.
- Buch, M.B. (ed) Second Survey of Research in Education. Baroda:Society for Educational Research & Development, 1979.
- Buch, M.B. (ed) Third Survery of Research in Education . New Delhi: National Council of Educational Research & Training. 1986.
- Buch, M.B. (ed) Forth Survery of Research in Education Vol I & Vol II New Delhi: National Council of Educational Research & Training. 1991.
- NCERT: Fifth Survery of Research in Education. Trends Reports Vol.I New Delhi: National Council of Educational Research & Training 1997.
- NCERT : Fifth Survery of Research in Education. Vol.II New Delhi: National Council of Educational Research & Training 2000.

Web Site : www.dauniv.ac.in

Books have come between our mind and life. They deprive us of our natural faculty of getting knowledge directly from nature and life and have generated within us the habit of knowing everything through books. We touch the world not with our mind, but with our books. They dehumanize and make us unsocial.... Let the students gather knowledge and materials from different regions of the country, from direct sources and from their own independent efforts.

- Rabindranath Tagore

महायोगी श्री अरविन्द के शिक्षा–दर्शन एवं इसकी प्रासंगिकता

अनूपी समैया

श्री अरविन्द एक महान् दार्शनिक होने के साथ–साथ उच्चकोटि के शिक्षाशास्त्री थे। श्री अरविन्द ने अपने शिक्षा संबंधी विचारों को अपने साप्ताहिक 'कर्मयोगिन' में प्रकाशित किया तथा बताया कि शिक्षक का प्रमुख उपकरण अन्तःकरण होता है। मानव–स्थित अन्तःकरण में छिपे सत्य को पहचानना व उभारना ताकि मानव मात्र की समस्याओं का अंत हो सके, यही शिक्षा का प्रमुख मंतव्य है तथा वर्तमान संदर्भ में अभीष्ट भी। श्री अरविंद ने शैक्षिक योजना में मानव अन्तःकरण को सबसे प्रमुख तत्व के रूप में स्वीकार किया। उनके अनुसार इस अन्तःकरण के चार पटल होते हैं, जो एक तरह से शिक्षा के साधन हैं।

प्रथम पटल चित्त– यह पटल स्मृतियों का भंडार होता है। यह सतह बाकी तीन सतहों की आधारशिला है। श्री अरविंद के अनुसार, चित्त को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह स्वाभाविक रूप से अपने कार्य हेतु यथेष्ट है। क्रियाशील स्मरण शक्ति के प्रशिक्षण और विकास की आवश्यकता है। चित्त ही वह है जिससे क्रियाशील स्मरण शक्ति समय पर वस्तु को खोज निकालती है। इससे अध्यापक सावधानीपूर्वक आवश्यक वस्तुओं का चयन करता है, ताकि सीखने वाले को जीवन से सम्बद्व सिद्वान्तों से परिचित कराया जा सके।

द्वितीय पटल मानस– इस पटल में मस्तिष्क का काम होता है। यह ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त संवेदनाओं को विचारों में परिणित करने का कार्य करता है। अतः शिक्षक का यह प्रमुख कार्य है कि वह ज्ञानेन्द्रियों का उचित उपयोग करना सिखाये तथा विद्यार्थियों को इस प्रकार प्रशिक्षित करे कि वह यथासम्भव तेज, चैतन्य और चतुर हो जाये तथा उनमें उस सीमा तक की उनकी कुशलता प्राप्त करने का निर्देशन दे, जिस सीमा तक की उनकी ज्ञानेन्द्रियों में शक्ति और योग्यता हो। उत्तम विचार के लिए ज्ञानेन्द्रियों के अलावा मस्तिष्क को भी प्रशिक्षित किया जाना आवश्यक है।

तृतीय पटल बुद्वि– मस्तिष्क जिस ज्ञान को ग्रहण करता है। उसे व्यवस्थित रूप देने का कार्य बुद्वि का है। इसमें विचार प्रक्रिया निहित होती है। शैक्षिक दृष्टि से श्री अरविन्द बुद्वि को शिक्षा के लिए बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं। वह बुद्धि के दाहिना एवं बांया दोनों हाथ मानते हैं। बुद्धि का दाहिना हाथ एकत्रीकरण, रचना, समन्वयीकरण करता है। यह परीक्षण, कल्पना,

निरीक्षण एवं अध्ययन करता है तथा आदेश देता है। दाहिना हाथ ज्ञान का स्वामी समझा जाता है। बायां हाथ बुद्धि के आलोचनात्मक तथा विश्लेषणात्मक गुण होते हैं। यह तुलना, श्रेणी विभाजन, संक्षिप्तीकरण करता है, एक–दूसरे की पहचान करता है। अर्थ एवं परिणाम निकालता है। बायां हाथ ज्ञान को केवल छू ही पाता है जबकि दाहिना हाथ आत्मा की गहराई तक जाता है। बायां हाथ सत्य को खोजता है जबकि दाहिना हाथ आत्मा की गहराई तक जाता है। बायां हाथ सत्य को खोजता है जबकि दाहिना हाथ उन तत्वों की खोज करने में लगा रहता है जिनकी न तो अभी तक खोज हुई है और न जिनका स्वरूप निर्धारण हुआ है क्योंकि मनुष्य द्वारा विवेचन अथवा तर्क करने के लिए बुद्धि के दोनों अंग आवश्यक है। शैक्षिक दृष्टि से बुद्वि का अच्छी प्रकार से प्रशिक्षण अति आवश्यक है, क्योंकि इसी के आधार पर शैक्षिक आयोजन इत्यादि होते हैं।

चतुर्थ पटल चेतना की शक्ति अन्तःदृष्टि– यह स्तर व्यक्ति को आत्मानुभूति कराता है। इसका विकास धीरे–धीरे होता है। यह ज्ञान का दर्शन है। इसके अच्छी प्रकार से विकास के साथ व्यक्ति भविष्य कथन भी करने लगता है। दिव्य दृष्टि प्राप्त व्यक्ति ही इस स्तर को प्राप्त करते हैं। इसके विकास में अध्यापकों को विशेष ध्यान देना चाहिए। शिक्षा में इस सत्य की अनुभूति ही वांछित है। आदर्श शिक्षक को चाहिए कि वह सहज ज्ञान–शक्ति के विकास का स्वागत करें और प्रोत्साहन दें। शिक्षक को बालक का मार्गदर्शक एवं सहायक होना चाहिए। श्री अरविंद कहते हैं कि 'शिक्षक छात्र को ज्ञान नहीं देता, वरन् वह यह दिखाता है कि वह स्वयं किस प्रकार ज्ञान को प्राप्त करे। वह उस ज्ञान को छात्र के समक्ष नहीं रखता, जो लिखित वह छात्रों को केवल दिखाता है कि ज्ञान कहॉ है और वह सतह पर आने के लिए किस प्रकार अर्जित किया जाये।'' यह विचारधारा श्री अरविन्द के आदर्शवादी दृष्टिकोण को प्रकृतिवादी तथा प्रयोजनवादी दृष्टिकोणों से समन्वित कर देती है।

व्यावहारिक प्रासंगिकता

1. श्री अरविन्द द्वारा ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा, नियंत्रण व संयम की आवश्यकता पर बल दिया गया। जिसकी वर्तमान में महती आवश्यकता है क्योंकि इससे ही जीवन दिव्य व चित्त शुद्ध होता है।

2. मानसिक प्रशिक्षण के अंतर्गत ध्यान केन्द्र श्री अरविन्द दर्शन की प्रमुख विशेषता है। जिससे स्मृति के प्रशिक्षण के साथ–साथ निर्णय शक्ति स्वतः ही प्रशिक्षित हो जाती है। तार्किक क्षमता के विकास हेतु भी प्रशिक्षण अत्यावश्यक है जिससे व्यक्ति निश्चित आंकड़ों से निष्कर्ष प्राप्त करते हुए सफलता व असफलता के आभास के साथ मनन एवं चिंतन करते हुए दिव्य जीवन के मार्ग पर अग्रसर हो सके।

3. श्री अरविन्द ने शिक्षा की पाठ्यचर्या को बहुत विस्तृत रूप प्रदान किया है, उसमें प्राचीन एवं अर्वाचीन तथा भारतीय एवं पाश्चात्य सभी उपयोगी ज्ञान एवं क्रियाओं को स्थान दिया है। परंतु प्रारंभ से ही बच्चों को मातृभाषा के साथ अंग्रेजी और फ्रेंच भाषा को पढ़ाने का राष्ट्रीय स्तर पर महत्व नहीं है। साथ ही हर स्तर पर योग की क्रिया को स्थान देना भी वर्तमान परिस्थितियों में संभव नहीं है। अर्थात श्री अरविन्द ने मातृभाषा को शैक्षिक व्ययवस्था में अपनाने पर बल दिया तथा टैगोर की तरह ही विदेशी भाषा को आत्मसात करने को भारस्वरूप व अतिरिक्त उर्जा व्यर्थी माना।

4. श्री अरविन्द का यह विचार कि रटने के स्थान पर समझने की विधि अच्छी है तथा योग की विधि समझने की उत्तम विधि है पर वर्तमान में इस योग को मन की एकाग्रता के रूप में ही लिया जा सकता है। कर्म या ध्यान योग के रूप में नहीं।

5. शिक्षकों से योगी होने की अपेक्षा करना इस युग में संभव नहीं है। आज के समय में तो शिक्षक अपने कर्त्तव्य का निष्ठा से पालन करें और बच्चों को जीवन के लिए तैयार करें।

6. शिक्षार्थियों को ब्रह्मचर्य पालन की बात एकदम उपयुक्त है लेकिन बच्चों को प्रारंभ से ही वास्तविक सत्य की खोज के लिए योग साधना की बात, आज के युग में व्यावहारिक नहीं है।

7. विद्यालयों में प्रारंभ से ही बच्चों के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए प्रयत्न किया जाना चाहिए, तभी वास्तविक सुख एवं शांति की प्राप्ति होगी और विद्यालय योग साधना के केन्द्र होंगे।

8. श्री अरविन्द शिक्षा को धर्म पर आधारित करना चाहते थे परंतु वर्तमान लोकतंत्रीय धर्मनिरपेक्ष भारत में शिक्षा को किसी धर्म विशेष अथवा यहॉ प्रचलित समस्त धर्मों पर आधारित करना संभव नहीं है। वर्तमान मांग तो सर्वधर्म सम्भाव अर्थात धार्मिक सहिष्णुता के विकास की है।

9. श्री अरविन्द के अनुसार राष्ट्रीय शिक्षा वह शिक्षा है जो राष्ट्र के नियंत्रण में राष्ट्र के समस्त लोगों को राष्ट्रीय पद्धति से दी जाती है। पांडिचेरी के 'श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केंद्र' की शिक्षा को देखने से स्पष्ट होता है कि वह संकुचित राष्ट्रीयता के दायरे से बाहर की शिक्षा है। वह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की शिक्षा है, परंतु उसकी आत्मा योग शिक्षा ही है।

10. श्री अरविंद द्वारा स्थापित आश्रम में देश–विदेश के, विभिन्न जातियों के, विभिन्न धर्मों को मानने वाले और विभिन्न आर्थिक स्तर से आए लोग रहते हैं, सभी शारीरिक श्रम करते हैं, उत्पादन करते हैं और इन सबके साथ–साथ ध्यान व योग करते हैं। भौतिक जीवन की रक्षा करते हुए आध्यात्मिकता की ओर बढ़ते हैं। इससे भौतिकता प्रधान एवं धर्मप्रधान समाज एवं संस्कृतियों की दूरी कम हो रही है और समाज में वर्गभेद समाप्त हो रहा है।

11. श्री अरविन्द जन–शिक्षा एवं स्त्री शिक्षा के समर्थक थे। बालक–बालिकाओं की समान शिक्षा व्यवस्था पर इन्होंने बल दिया। पांडिचेरी में स्थित 'श्री अरविन्द आश्रम' की निःशुल्क शिक्षा प्रणाली वर्तमान में व्याप्त अनेक दोशों से मुक्त रहते हुए उनके विचारों के जीवन्त स्मारक के रूप में अधिष्ठित है।

मूल्यांकन–श्री अरविन्द के शिक्षा–दर्शन के विभिन्न पहलुओं के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि उनका शिक्षा–दर्शन सर्वांग विकास के आदर्श के बहुत निकट है। श्री अरविन्द का चिंतन मौलिक है। इनका शिक्षा–दर्शन उनके विकासवाद के आदर्श सिद्धांत पर टिका हुआ है। मनुष्य की प्रत्येक क्रिया का लक्ष्य उसका विकास है और शिक्षा का लक्ष्य मनुष्य का सर्वांगीण विकास है। यह लक्ष्य केवल विद्यालयों में शिक्षा से प्राप्त नहीं किया जा सकता। श्री अरविन्द के अनुसार शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए योग आवश्यक है। योग मानव–विकास का सबसे अधिक महत्वपूर्ण और सर्वाधिक शक्तिशाली साधन है। इसके बिना पूर्ण विकास असंभव है। यम, नियम, आसन और प्राणायाम विद्यार्थियों को ध्यान केंद्रित करने में सहायता दे सकते हैं। केवल शारीरिक और मानसिक प्रशिक्षण ही शिक्षा का लक्ष्य नहीं है। उसका लक्ष्य व्यक्ति और समाज को सर्वांग पूर्णता की ओर ले जाना है। इस प्रक्रिया में जब ऐसी स्थिति आ जाती है कि विद्यालय की शिक्षा पर्याप्त नहीं होती तो वहॉ पर योग की सहायता लेनी चाहिए।

योग और शिक्षा–प्रणाली के संबंध के विषय में विभिन्न शिक्षा–दार्शनिकों को श्री अरविंद के विचार पसंद न भी आएं, तो भी उनके शिक्षा–दर्शन की पीछे दी गयी संक्षिप्त रूपरेखा से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य, प्राचीन और आधुनिक शिक्षा–दार्शनिकों के विचारों में महत्वपूर्ण सत्यों का अनुपम समन्वय उपस्थित किया है। उनके शैक्षिक आदर्श ठोस मनोवैज्ञानिक आधार पर स्थापित हैं। उनकी शिक्षा–प्रणाली में मनुष्य के प्रत्येक पहलू मानसिक, आध्यात्मिक, नैतिक और धार्मिक विकास का प्रयास किया गया है। वे व्यक्ति की पूर्णता को उसके सामाजिक पहलू के विकास के बिना असंभव मानते हैं। इसलिए उनकी शिक्षा–प्रणाली में सर्वांग व्यक्तित्व में व्यक्तिगत शक्तियों और गुणों के विकास के साथ–साथ सामाजिक गुणों के विकास पर भी जोर दिया जाता है।

श्री अरविन्द ने पाश्चात्य दर्शन की अच्छाईयों को लेकर भारतीयता को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया है। श्री अरविन्द का वैचारिक दृष्टिकोण मुख्यतः आदर्शवादी है; उन्होंने व्यक्ति में अन्तर्निहित शक्ति के विकास को शिक्षा मानते हुए अन्तःकरण को विशेष स्थान प्रदान किया। अपने प्रकृतिवादी दृष्टिकोण के अंतर्गत अरविन्द ने ज्ञानेन्द्रियों के प्रशिक्षण पर बल दिया। शिक्षा में ऐसी आवश्यकता का रेखांकन किया, जो बालक को प्रयोजनवादी परिप्रेक्ष्य में जीवन की आवश्यकताओं से परिचित कराये। एक यर्थाथवादी के रूप में वे आधुनिक जीवन की उपेक्षा नहीं करते और यह कहते हैं कि इसी संसार में रहकर, यहीं कर्म करते हुए मुक्ति पाई जा सकती है।

स्पष्टतः समस्त दार्शनिक विचारों का समन्वय करते हुए श्री अरविन्द ने विश्व के समक्ष सर्वांग दर्शन का वैचारिक धरातल प्रस्तुत किया। इसके साथ ही मानव विकास के क्रम को अवरोहण और आरोहण के रूप में प्रस्तुत करके उन्होंने उलझन पैदा कर दी और इन्होंने शिक्षा की जिस मुक्त प्रणाली की बात की है वह स्वीकार करने योग्य नहीं है। औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में उद्देश्य, पाठ्यचर्या, शिक्षण विधियॉ, पठन–पाठन का समय सभी कुछ निश्चित होता है। इन सबके अभाव में किसी भी समाज में शिक्षा को व्यवस्थित रूप में नहीं चलाया जा सकता। स्पष्ट है कि शिक्षा की मुक्त प्रणाली को जनशिक्षा का आधार नहीं बनाया जा सकता।

अतः कह सकते हैं कि एक दार्शनिक के रूप में श्री अरविंद ने भारतीय दर्शन को वैज्ञानिक बनाने का प्रयत्न किया है और कुछ लोग इनके विचारों से बड़े प्रभावित हुए हैं। ये विश्ववंधुत्व में विश्वास करते हैं। श्री अरविंद का दर्शन केवल भारतीय सीमा तक सीमित नहीं है। पांडिचेरी आश्रम की शाखाएँ देश–विदेश में स्थापित हैं जो पूरे संसार में भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के बीच समन्वय स्थापित करने की ओर प्रयत्नशील है। योग अब भूमण्डलीय विषय हो गया है। शिक्षा के क्षेत्र में श्री अरविंद का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। प्रारंभ में इन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन में भाग लिया जिसका प्रभाव कुछ ही वर्षो तक रहा। उसके बाद ये योग साधना की ओर प्रवृत्त हो गए।

आज भारत में शिक्षा के क्षेत्र में विचारकों और शिक्षकों के सामने जब अनेक समस्याएँ भयंकर रूप में उपस्थित हैं तो इन समस्याओं के मूल कारणों को खोजने में श्री अरविंद के शिक्षा–दर्शन से सहायता ली जा सकती है, क्योंकि अन्य क्षेत्रों के समान शिक्षा के क्षेत्र में भी उन्होंने व्यापकता और गहराई दोनों ही दृष्टि से सत्यों की खोज की है। इसलिए उनका शिक्षा–दर्शन केवल समकालीन भारतीय शिक्षा–दर्शन से ही नहीं, अपितु विश्व के शिक्षा–दर्शन में भी विशिष्ट स्थान रखता है।

संदर्भ

1. सिंह, डॉ. एन.पी. 'शिक्षा के दार्शनिक आधार' संस्करण 2007, सूर्या पब्लिकेशन, आर. लाल.बुक डिपो, मेरठ।
2. माथुर, डॉ. एस.एस. 'शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार' चतुर्थ संस्करण 2006, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
3. पाण्डेय, डॉ. रामशकल. 'शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि' नवम् संस्करण 2007, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
4. सक्सेना, एन.आर. स्वरूप, चतुर्वेदी, डॉ. शिखा तथा पाण्डेय डॉ. के.पी. 'उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक' प्रथम संस्करण 2007, सूर्या पब्लिकेशन, आर.लाल.बुक डिपो, मेरठ।
5. शर्मा,डॉ. बी.एल. एवं सक्सेना, डॉ. आर.एन. 'शिक्षा शास्त्र' संस्करण 2011, सूर्या पब्लिकेशन, आर.लाल.बुक डिपो, मेरठ।
6. रूहेला, प्रो. सत्यपाल 'विकासोन्मुख भारतीय समाज में शिक्षक और शिक्षा' द्वितीय संस्करण 2006, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
7. लाल एवं तोमर 'विश्व के श्रेष्ठ चिंतक' संस्करण 2005, सूर्या पब्लिकेशन, आर.लाल. बुक डिपो, मेरठ।

59th All India Adult Education Conference

The Indian Adult Education Association is organising 59th All India Adult Education Conference at Bhubaneswar, Odisha from December 16-18, 2011. The theme of the Conference is "Promoting Reading Habits and Creating Literate Society". All the adult educators are cordially invited.

The delegates who desire to attend the conference may remit a sum of '1250/- towards delegation fee and boarding and lodging charges through a separate Demand Draft drawn in favour of "Indian Adult Education Association" payable at New Delhi.

The delegates are requested to send their Registration Forms duly filled to General Secretary, Indian Adult Education Association, 17-B, Indraprastha Estate, New Delhi - 110 002 alongwith the Demand Draft for '1250/- on or before November 30, 2011. Priority for allotting accommodation will be given to the registered delegates.

Those who desire to present thematic papers in the conference may send the same to IAEA on or before November 30, 2011.

at E-mail : directoriaea@gamil.com

प्रौढ़ शिक्षा : सामाजिक संरचना का ताना–बाना एवं राष्ट्र निर्माण

लक्ष्मण शिंदे
महेन्द्र पाटीदार

शिक्षा का प्रथम लक्ष्य व्यक्ति में अंतः प्रेरणा की स्थिति का विकास करना है। इसलिए गांधीजी ने भी मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क और आत्मा में विद्यमान सर्वश्रेष्ठ गुणों के प्रकटीकरण से शिक्षा का अभिप्राय निरूपित किया है। सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। जागरूकता, अभिक्षमता एवं अभिवृति के अनुसार वातावरण में सुधार, अपनी क्षमताओं का सही उपयोग एवं परिस्थितिजन्य निर्णय लेने में शिक्षा व्यक्ति और समाज की सहायता करती है। समाज की आंतरिक एवं बाह्य व्यवस्थाओं एवं परिस्थितियों से सामान्यतः प्रौढ़ व्यक्तियों का संपर्क जुड़ा रहता है। हमारे देश में प्रौढ़ व्यक्तियों की जनसंख्या का प्रतिशत अधिक है। यदि प्रौढ़ शिक्षित हैं तो निश्चय ही देश के विकास में उनका योगदान सकारात्मक वातावरण का निर्माण करेगा। वह तत्काल परिणाम देना प्रारम्भ कर देगा। इसलिए भारतीय संदर्भ में प्रौढ़ शिक्षा अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। भारत की जनगणना 2011 के अनुसार भारत की साक्षरता 74.04 प्रतिशत है। जिसमें से पुरूष साक्षरता 82.14 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता 65.46 प्रतिशत है । इस से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संदर्भ में प्रौढ़ शिक्षा की नितांत आवश्यकता है। शिक्षा से वंचित वर्ग अर्थात् प्रौढ़ों को प्रौढ़ शिक्षा के माध्यम से या उनकी स्थिति विशेष के अनुसार शिक्षा प्रदान की जाती है, तो यह राष्ट्र निर्माण की दिशा में एक सही प्रयास होगा। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में सूचनाओं को जमा करना मात्र न होकर उसे सचेत करना और अनुभव प्रदान करना होता है। शिक्षा से आशय संप्रेषण एवं संवाद से है न कि ज्ञान का हस्तांतरण करने से। वक्ता और श्रोता के मध्य तालमेल स्थापित करना एवं अनुकूल माध्यम के द्वारा उचित वातावरण स्थापित करना प्रौढ़ शिक्षा का मूलमंत्र है। वर्तमान में अनपढ़ और अशिक्षित लोगों को शोषण और उत्पीड़न के दौर से गुजरना पड़ रहा है ।

ऐसे में समाज को एक समीक्षाई चेतना की शिक्षा एवं उत्पीड़कों की मुक्ति की शिक्षा की जरूरत है। इसके लिए महान शिक्षाशास्त्री फ्रेरे ने समाज को जागरूक करने की आवश्यकता पर बल दिया है। फ्रेरे के अनुसार शिक्षा एक शक्तिशाली उपकरण है, जिसका सही उपयोग देश एवं समाज की तस्वीर बदल सकता है। उनका मानना है कि समाज में यथास्थिति बनाए रखने की नहीं बल्कि इसके परिस्थितियों को बदलने की जरूरत है। इसके लिए बालकों को भी क्रियाशील व रचनाकार के रूप में प्रस्तुत करना होगा।

सामाजिक संरचना और प्रौढ़ शिक्षा

समाज व्यक्ति को सभी प्रकार के अनुभव प्रदान करता है। व्यक्ति का जीवन समाज से प्रभावित रहता है। व्यक्ति भी समाज को प्रभावित करता है। इमैन्यूल कांत के अनुसार "शिक्षा व्यक्ति की उस संपूर्णता का विकास है, जिसकी उसमें क्षमता है'। शिक्षा समाज, विद्यालय और व्यक्ति के मध्य समन्वय की प्रक्रिया स्थापित कर राष्ट्र निर्माण की दिशा निर्धारित करती है। शिक्षा समाज का एक अहम् पक्ष है। बिना शिक्षा के समाज छिन्न भिन्न रहेगा, उपद्रव होंगे, लचीलापन नहीं रहेगा, सामाजिक नियंत्रण नहीं रहेगा और इसके कारण समाज की चिंतन शक्ति नष्ट हो जायेगी। चारों ओर अशांति एवं अराजकता के बादल दिखाई देंगे। इसलिए शिक्षा के माध्यम से समाज में जागरूकता लाई जानी चाहिए।

शिक्षा का उद्देश्य एक लोकतांत्रिक, समतामूलक और मानवीय समाज की रचना करना है। संविधान भी इसकी पैरवी करता है। शिक्षा भारतीय समाज और राष्ट्र के उत्थान का सशक्त माध्यम है। औपचारिक शिक्षा साधनों के सीमित प्रयोग और विभिन्न बंधनों के आधार पर प्रशासित किए जाने वाले उपक्रम का द्योतक है, और ऐसे साधन समग्र व्यवस्था को प्रभावित करने में प्रायः असफल रहते हैं। इस तथ्य को विगत 64 वर्ष की हमारी शिक्षा नीतियों के द्वारा समझा जा सकता है। शिक्षा के लिए औपचारिक माध्यम अवश्य ही सक्षम है, लेकिन देश के 50 से 60 प्रतिशत प्रौढ़ों के लिए औपचारिक शिक्षा के अलावा भी अन्य संभावनाऐं तलाशना आवश्यक है। इसी दिशा में प्रौढ़ शिक्षा की विभिन्न योजनाएं और कार्यक्रम एक नवीन संकल्पना के साथ आधुनिक भारत के निर्माण करने में कुछ हद तक सफल भी रहें हैं।

सामाजिक संरचना एवं वर्तमान संदर्भ

सबसे बडी समस्या तो यह है कि (प्रौढ़) उत्पीड़ित लोग विभाजित हैं और अप्रमाणिक अस्तित्व वाले लोग हैं। वे अपनी मुक्ति के शिक्षा शास्त्र के विकास में किस प्रकार सहभागी हो सकते है यह एक सवाल है? उनकी मुक्तिदायी शिक्षा उन्हें इस उत्पीड़न से मुक्ति दिलाने वाली दाई है जिसके काम में वह तभी योगदान दे सकते हैं, जब वे स्वयं को उत्पीड़क के मेजबान के रूप में पहचानें। उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र उनकी इस आलोचनात्मक खोज का औजार है। इस प्रकार "मुक्ति एक प्रसव है और यह प्रसव पीड़ादायक है इससे जो मनुष्य पैदा होता है, एक नया मनुष्य होता है। यह मनुष्य तभी जीवित रह सकता है, जब शिक्षा उत्पीड़क के अंतर्विरोध के स्थान पर सभी मनुष्यों का मानुषीकरण हो जाये। इस कार्य में शिक्षा उनका सही मार्गदर्शन कर सकती है।

कोई भी शिक्षा शास्त्र जो वास्तव में मुक्तिदायी हो (प्रौढ़ों) उत्पीड़ितों को भाग्यहीन मानकर उस से अलग नहीं रह सकता। उत्पीड़ितों का शिक्षा शास्त्र उत्पीड़कों के द्वारा न तो विकसित हो सकता है और न व्यवहार में लाया जा सकता है। यह शिक्षा शास्त्र केवल (प्रौढ़ों) उत्पीड़ितों का शिक्षा शास्त्र नहीं रहकर स्थायी मुक्ति की प्रक्रिया में सभी मनुष्यों का शिक्षा शास्त्र बन जाता है। शिक्षा शास्त्र के लिए अनिवार्य है कि वह उत्पीड़क और उत्पीड़ित दोनों की समस्या को हल करे क्योंकि जैसे ही हम उत्पीड़न की बात करते हैं तो हिंसा शुरू हो जाती है। हिंसा की शुरूआत कभी उत्पीड़ितों ने नहीं की है। वे तो हिंसा की पैदावार हैं, वे हिंसा की शुरूआत कैसे कर सकते हैं?

असहाय लोग आतंक की शुरूआत करते हैं वे लोग हिंसक होते हैं, लेकिन खास बात तो यह है कि उत्पीड़ितों द्वारा उत्पीड़िकों के व्यवहार के जवाब में हमेशा प्रेम की बात ही की जाती है। जहाँ उत्पीड़ितों की हिंसा उत्पीड़ितों को पूर्ण मनुष्य बनने से रोकती है वहीं उत्पीड़ितों द्वारा जो भी कारवाई की जाती है, उसका आधार मनुष्य बनने की इच्छा ही होती है । उत्पीड़कों के अनुसार उत्पीड़ितों के एक ही अधिकार का अस्तित्व होता है। वह है उनके सुख चैन से रहने का अधिकार–इसे भी वे अधिकार नहीं मानते सिर्फ मजबूरी में इसे स्वीकार करते हैं। थोड़ी बहुत रियायत भी इसीलिए देते हैं कि उत्पीड़ितों का अस्तित्व उनके लिए जरूरी है। स्वामित्व की इसी ललक के कारण उत्पीड़क यह मान लेते हैं कि वे हर किसी को खरीद सकते हैं, उसे अपना बना सकते हैं, अपनी खरीदी वस्तु में बदल सकते हैं । उनकी यह अवधारणा भौतिकवादी होती है।

मुनाफा कमाना उनका पहला लक्ष्य होता है और इसके लिए उनका यही प्रयास होता है कि उन्हें ज्यादा मिले, चाहे इसी वजह से उत्पीड़ितों को मुनाफा कम मिले या नहीं मिले। उत्पीड़ितों की यह विशेषता होती है कि वे स्वयं को अज्ञानी मानते हैं। वे सोचते हैं कि गुरु श्रेष्ठ है, उसे सब आता है। अतः उन्हें उसकी बात माननी चाहिए। जब तक उत्पीड़ितों की आशा इसी प्रकार बनी रहेगी वे कुछ नहीं बोलेंगे। इसी कारण वे प्रतिरोध करने में हिचकते हैं। उनमें आत्मविश्वास बिलकुल नहीं होता। वे उत्पीड़कों पर विश्वास करते रहते हैं। पर धीरे–धीरे उत्पीड़ित लोग अपने पर भरोसा करने लगते हैं। यह तब होता है जब वे स्वयं पर भरोसा करने लगते हैं। वे उत्पीड़क को खोज लेते हैं और अपनी मुक्ति के लिए संगठित संघर्ष करने लगते हैं। उत्पीड़ितों की मुक्ति का संघर्ष चाहे किसी भी अवस्था में हो उनके साथ संवाद अवश्य चलाया जाना चाहिए। इस संवाद कर्म को आवश्यक मानकर चला जाए यही अपेक्षित है।

राष्ट्र निर्माण और शिक्षा

भारतीय परिप्रेक्ष्य में राष्ट्र निर्माण के प्रमुख साधनों में प्रजातांत्रिक प्रणाली, राष्ट्रीय सुरक्षा

के लिए सेना, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के लिए नीति एवं पड़ोसी देशों के साथ संबंधों को शामिल किया जा सकता है। राष्ट्रीय विकास को तीव्र करने के लिए शिक्षण संस्थाओं एवं कुशल नागरिकों की जरूरत होती है। राष्ट्र निर्माण कैसे होगा? शिक्षा की क्या भूमिका है ? राष्ट्र निर्माण में राष्ट्र निर्माता, नेता, शिक्षा शास्त्री आदि का क्या योगदान हो सकता है ?

भारत में शिक्षा का क्या प्रतिमान हो? इस संदर्भ में ब्राजील के महान शिक्षा शास्त्री पॉवलो फ्रेरे के प्रतिमान को हम आधार बना सकते है, क्योंकि उनके प्रतिमान ने विकासशील देशों की शिक्षा को अत्यधिक प्रभावित किया है। सत्ता का प्रतिमान लगभग आत्मकेन्द्रित ही रहा है। एक सार्वभौमिक वातावरण के निर्माण के लिए तटस्थ प्रतिमान का होना श्रेयस्कर है।

पॉवलो फ्रेरे और शिक्षा

पॉवलो फ्रेरे एक महान शिक्षक और शिक्षा शास्त्री थे, जिन्होंने दुनिया भर के प्रगतिशील, जनवादी और समाजवादी शिक्षकों को अपने विचारों से प्रभावित किया है। उन्होंनें उत्पीड़ितों की मुक्ति के लिए सामाजिक रुपान्तरण की आवश्यकता और उसमें शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका को पहचान कर अपने आचरण से उत्पीड़ितों के शिक्षा शास्त्र का निर्माण किया है। जो शिक्षा की एक पद्धति मात्र नहीं, बल्कि शिक्षा का दर्शन और सांस्कृतिक कर्म का सिद्धान्त है।

उस दौर के विश्वव्यापी आर्थिक संकट के समय ब्राजील की अर्थव्यवस्था तबाह हो गई थी। सारे उद्योग धंधे चौपट हो गये, भयंकर बेरोजगारी फैल गई थी। भूख से लाचार लोग खुद को बेचकर गुलाम बनने को मजबूर हो गये थे।

इस दौरान अनेक तानाशाह आये और चले गये। फिर सन् 1961 में ब्राजील में राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार बनी और इस सरकार ने जनहित के काफी काम किये उनमें से एक था "राष्ट्रीय साक्षरता अभियान" जिसमें कई बुद्धिजीवियों और शिक्षकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस अभियान के तहत फ्रेरे को देश के विभिन्न भागों में जाकर काम करने का गौरव मिला और वे जनता और शासक के संबंधों का विश्लेषण करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि "शिक्षा भी राजनीति है और जिस प्रकार राजनीति वर्गीय होती है, शिक्षा भी वर्गीय होती है।

अतः उत्पीड़ितों की शिक्षा और उसकी पद्धति प्रभुत्वशाली अभिजनों की उस शिक्षा से भिन्न होनी चाहिए अर्थात् उत्पीड़ितों की शिक्षा तो उत्पीड़न की व्यवस्था को समाप्त और उत्पीड़ितों को मुक्त करने वाली होनी चाहिए"। उन्होंनें जनता से आह्वान किया कि वह शिक्षा को क्रांतिकारी बनाकर एक जनचेतना की शुरूआत करें।

विकासशील देश और शिक्षा

विकासशील देशों में प्रारंभ से ही अमानुषीकरण की समस्या एक केंद्रीय समस्या रही है। अमानुषीकरण मनुष्य को मनुष्य नहीं बनने देता है। यह विकार दोनों तरह के लोगों पर अपनी छाप छोड़ देता है। एक तो वे लोग जिनकी मनुष्यता को चुरा लिया गया है, दूसरे वे लोग जिन्होंने दूसरों की मनुष्यता को चुरा रखा है। यह संघर्ष तो इसलिए होता है कि अमानुषीकरण को दूर किया जाए परन्तु यह उत्पीडकों को हिंसक बनाता है और बदले में उत्पीड़ित उस हिंसा से अमानुषिक बन जाते हैं। यदि हम चाहते हैं कि संघर्ष सार्थक हो तो हमें ऐसी मनुष्यता का सृजन करना होगा जो उत्पीडकों को उत्पीडक बनाने वाले नहीं, बल्कि मनुष्य बनाने वाले हों। इसके लिए प्रौढ़ों को शिक्षित करना होगा। पॉवलो फ्रेरे कहते हैं, "स्वतंत्रता उपहार में नहीं मिलती बल्कि स्वतंत्रता तो तब मिलती है, जब हम संघर्ष में विजयी बनते हैं। स्वतंत्रता कोई ऐसा आदर्श नहीं है जो मिथक बन जाये। वह तो मानवीय पूर्णता के प्रयास की एक अपरिहार्य शर्त है। इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित होना चाहिए"।

विद्यालय के अंदर हो या बाहर, शिक्षक छात्र संबंध की बात आती है। शिक्षक यथार्थ के विषय में इस तरह से बोलता है कि मानो वह गतिहीन स्थिर खानों में बटी हुई कोई चीज हो। जिसके विषय में भविष्यवाणी की जा सकती है या फिर वह ऐसे विषय का प्रतिपादन करता है, जिसका छात्रों के अस्तित्व एवं अनुभव से कोई संबंध नहीं होता है।

वर्तमान संदर्भ में शिक्षक एवं शिक्षा

शिक्षक एक वर्णनकर्ता है। वह विद्यार्थियों को वर्णित वस्तु को यांत्रिक ढंग से रखने की ओर ले जाता है। वह विद्यार्थियों को बर्तन बना देता है, जिसे शिक्षक द्वारा भरा जाना होता है। जो इन पात्रों को भर सके वही अच्छा शिक्षक है। जो विद्यार्थी जितने ज्यादा दब्बुपन के साथ स्वयं को भरने दे, वे उतने ही अच्छे विद्यार्थी होते हैं। इस प्रकार शिक्षा बैंक में पैसा जमा करने की भांति विद्यार्थियों में ज्ञान राशि में जमा करने का काम बन जाती है। वह जिन विषयवस्तु को जमा करने का काम करता है, विद्यार्थी उन्हें धैर्यपूर्वक ग्रहण करते हैं, रटते हैं दोहराते हैं। यह शिक्षा की बैंकीय अवधारणा है। जिसमें विद्यार्थियों की सक्रियता के लिये सिर्फ इतनी गुंजाइश होती है कि वे जमाओं को ग्रहण कर लें, फाइल कर लें और संभाल कर रखे रहें। इस प्रकार यह सच है कि वे जिन चीजों को जमा करते हैं उनके संग्राहक और सूचीकार बनने का अवसर भी पाते हैं। इन सबका कारण यह है कि जिज्ञासा के बिना चिंतन और कर्म, संयुक्त आचरण के बिना मनुष्य, सचमुच–मानवीय नहीं बन सकता। शिक्षा की बैंकीय अवधारणा में ज्ञान एक उपहार होता है। खुद को ज्ञानवान समझने वाले लोगों द्वारा वह उपहार अज्ञानी लोगों को दिया जाता है।

दूसरों को अज्ञानी बताना तो उत्पीड़न की विचारधारा की विशेषता है। शिक्षा और ज्ञान की प्रक्रिया जिज्ञासा को नहीं मानती है। शिक्षक तो अपने आप को ज्ञानी मानकर छात्रों के समक्ष एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत होता है। वही दूसरी ओर स्वातंत्रवादी शिक्षा का उददे्श्य शिक्षक और विद्यार्थी के बीच सामंजस्य उत्पन्न करना होता है। शिक्षा का आरंभ छात्र–शिक्षक अंतर्विरोध का समाधान करते हुए ही होना चाहिये। यह तभी हो सकता है, जब अंतर्विरोध के दोनों ध्रुवों को मिला दिया जाये, ताकि दोनों एक साथ चल सकें। बैंकीय अवधारणा तो इसको कम करने के बजाय बढ़ाती है।

- शिक्षक पढ़ाता है, छात्र पढ़ायं जाते हैं।
- शिक्षक सब कुछ जानता है, पर छात्र कुछ भी नहीं जानते हैं।
- शिक्षक बोलता है और छात्र चुपचाप सुनते हैं।
- शिक्षक अनुशासन लागू करता है और छात्र अनुशासित होते हैं।
- शिक्षक अपनी मर्जी का मालिक है, वह अपनी मर्जी चलाता है और छात्रों को उसके अनुसार चलना पड़ता है।
- शिक्षक कर्म करता है और छात्र उसके कर्म के जरिये सक्रिय होने के भ्रम में रहते हैं।
- शिक्षक पाठ्यक्रम बनाता है और छात्रों को वही पाठ्यक्रम पढ़ना पड़ता है।
- शिक्षक अपने पेशेवर ज्ञान को अपना अधिकार समझता है। खुद को उस विषय का विशेषज्ञ समझता है और अपने इस अधिकार का उपयोग करता है।
- शिक्षक, शिक्षण–अधिगम की प्रक्रिया का कर्त्ता होता है और छात्र महज अधिगम की वस्तुएँ ।

इस प्रकार शिक्षा बैंकीय अवधारणा विद्यार्थियों की सृजनात्मक शक्ति को न्यूनतम कर देती है। जल्दी से विश्वास कर लेने की प्रवृति को बढ़ाती है। इसलिये वह उत्पीड़कों का हित साधन करती है जो यह नहीं चाहते है कि विश्व की वास्तविकता लोगों के सामने आये और न ही उसका रूपान्तरण हो अर्थात् वे नैसर्गिक रूप से किसी भी प्रयोग का विरोध करते हैं। प्रौढ़ों को एक स्वछंद वातावरण में विचरण करने का अवसर प्रदान करने की आवश्यकता है। इस हेतु प्रौढ़ शिक्षा की शिक्षण विधियों में निम्नलिखित को शामिल किया जा सकता है–

1. कहानी विधि द्वारा : कहानियों के माध्यम से शोषण की वास्तविक अभिव्यक्ति–ताकि जागरूकता आए।
2. चित्रों के माध्यम से : ताकि उत्तेजना आए।
3. संवाद विधि द्वारा : वैचारिक परिपक्वता के लिए।
4. गतिविधियों द्वारा : रचनात्मकता एवं सृजनात्मकता के लिए ।

उत्पीड़ित (प्रौढ़) लोग हमेशा समाज में रहते हैं, परन्तु उन्होंने स्वयं को दूसरों के लिए जीवन जीने वाला बना रखा है। इस संरचना को बदलने के लिए उन्हें अपने आप में बदलाव लाना होगा। यह बदलाव उनकी जड़ें खोद देगा जो उत्पीड़क हैं। इसलिए वे विद्यार्थियों के विवेकीकरण से डरते हैं और खतरे को टालने के लिए शिक्षा की बैंकीय अवधारणा का इस्तेमाल करते हैं। शिक्षक एक बैंक का क्लर्क है। वह यह नहीं सोचता है कि उसे छात्र के साथ एकजुट होना चाहिए। एक जुटता के लिए सम्प्रेषण आवश्यक है। अतः वह सम्प्रेषण से डरता है। प्रभुत्व जमाने वाली और कायम रखने के काम आने वाली शिक्षा छात्रों के अंदर झट से विश्वास करने की प्रवृत्ति को बढ़ाती है। इसका विचारात्मक उद्देश्य यह होता है कि छात्र उत्पीड़न के अनुकुल बनें। जो लोग ऐसा चाहते हैं कि ऐसा नहीं हो उनके लिए जरूरी है कि वे प्रतिबद्ध होकर काम करें। बैंकीय अवधारणा को खारिज कर दें। वे जमा करने वाले शैक्षिक उद्देश्यों को त्याग कर मनुष्य की समस्याओं को विश्व से उनके संबंधों की समस्याओं के रूप में उठाना शिक्षा का उद्देश्य मानें।

शिक्षा बैंकीय अवधारणा को तोड़कर छात्र के अन्तर्विरोध को दूर कर देती है। बैंकीय अवधारणा में प्रत्येक वस्तु के दो स्तर माने जाते हैं। इसी प्रकार शिक्षक के कर्म की भी दो अवस्थाएं मानी जाती है। पहली अवस्था में जब वह अपने अध्ययन कक्ष या प्रयोगशाला में बैठकर छात्रों के लिए पाठ तैयार करता है। दूसरा वह छात्रों के सामने उस वस्तु का प्रतिपादन करता है। यहां पर यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि छात्र समझे बल्कि याद करने पर ही जोर दिया जाता है। अतः ज्ञान और संस्कृति के नाम पर हमें ऐसी व्यवस्था मिलती है, जिसमें न तो सच्चा ज्ञान ही मिलता है और न ही सच्ची संस्कृति। विद्यार्थी ज्यों–ज्यों स्वयं को विश्व में शमिल करने लगते हैं और विश्व में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का समाधान करते हैं, त्यों–त्यों उन्हें अधिक चुनौती मिलने लगती है। वे इन चुनौतियों का सामना करके स्वयं को प्रतिबद्ध या ज्ञानी मानने लगते हैं। शिक्षा सृजनात्मकता को बढ़ावा देती है। यह भविष्यसूचक एवं आशावादी है। यह मनुष्य की ऐतिहासिक प्रकृति से मेल खाती है और यह बात करती है कि मनुष्य स्वयं के पार जा कर ही आगे देखते हैं। इस प्रकार शिक्षा यह कहती है कि शिक्षा एक मानववादी और मुक्तिदायी आचरण है। वह इस बात को आधारभूत मानकर यह जवाब देती है कि प्रभुत्व के अंतर्गत दबे कुचले मनुष्यों को अपनी मुक्ति के लिए अवश्य लड़ना चाहिये। शिक्षा मनुष्यों को इस योग्य भी बनाती है कि वह अपने पर विजय पाये। इसके फलस्वरूप उसका मानुषीकरण होता है।

निष्कर्ष रूप में यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि विश्व के सभी प्रौढ़ों को अपने पर थोपे गए विचारों को पूर्णतः उसी रूप में स्वीकार नहीं करना चाहिए। अपितु चिंतन, मनन, विवेक, सृजनात्मक एवं तार्किक रूप से विश्लेषण करना चाहिए जिससे उसकी वास्तविकता का पता लगाया जा सके। इस प्रक्रिया में शिक्षा वह साधन है, जो सभी को यह अवसर प्रदान करती

है। साथ ही साथ शिक्षा उन्हें एक नयी दिशा देने का कार्य भी करती है। शिक्षा के द्वारा यह कार्य उनके स्तर को ध्यान में रखकर किया जाता है, क्योंकि इसमें कई बार शिक्षा की विषयवस्तु को छोड़कर दैनिक जीवन की बातों पर चर्चा की जाती है। दैनिक जीवन की बातें ही उन्हें इस प्रक्रिया से जुड़े रहने में मदद करती है। इस प्रकार यदि भारत के सभी प्रौढ़ों को शिक्षा नैसर्गिक रूप में दी जाये, तो भारत जैसे विकासशील देश की स्थिति में निश्चित ही परिवर्तन होगा और वह बहुत तीव्रता से विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में आ जाएगा।

संदर्भ

- गुप्ता,एस.पी. एवं गुप्ता,ए.(2010) : भारतीय शिक्षा का इतिहास , विकास एवं समस्याएं, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
- त्यागी, जी. डी., (2010): भारत में शिक्षा का विकास, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा
- शैक्षिक योजना और प्रशासन संस्थान, वर्ष 10, अंक 2, भाग 2003/7, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली–16

- Kincheloe, Joe L. (2008): Critical Pedagogy, 2nd Ed., New York Peter Lang
- Mann, B. (1996): The Pedagogical and Political Concepts of Mahatma Gandhi & Paulo Freire, Clauben, B.(ed.): International Skadics in Political Socialization, Hamburg,

http://home.oise.utoronto.ca/~daniel_schugurensky/freire/freirebooks.html

http://www.bookfinder.com/dir/i/Education_for_Critical/

http://www.bookfinder.com/dir/i/Pedagogy_in_Process

We must not for a moment forget,
it is a birth right of every individual
to receive at least
the basic education
without which he cannot
fully discharge his duties as a citizen.

Maulana Abul Kalam Azad

महिला सशक्तीकरण : शिक्षक का दायित्व

हरीश चन्द्र चौबीसा

प्राचीन भारतीय सभ्यता व संस्कृति के स्वर्णिम इतिहास पर नजर डालें तो यह स्वतः ही सिद्ध हो जाता है कि तब समाज के विकास में महिलाओं की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी। वे यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता की कहावत को चरितार्थ करती थीं। लेकिन बदलते समय के साथ परिवेश में भी बदलाव आया है। आज का एक बड़ा प्रश्न यह है कि 21वीं शताब्दी में महिलाओं की दशा, दिशा व दीक्षा कैसी होगी? गौर करें तो आये दिन रोज कोई न कोई घटना ऐसी द्रष्टव्य होती है जहां नारी को डायन माना जाता है व मारपीट कर उसे प्रताड़ित किया जाता है। आज बेटा अपनी ही माँ को वृद्धाश्रम की राह बता रहा है। आखिर इस पावन धरा पर नारी अपमानित क्यों हो रही हैं? यदि नारी समाज द्वारा इसी तरह अपमानित होती रही तो भारत विश्व समुदाय के समक्ष कभी भी सम्मान के साथ खड़ा नहीं हो पाएगा। ऐसे में आवश्यकता है महिला सशक्तीकरण को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान करने की।

महिला सशक्तीकरण का अभिप्राय

महिला राष्ट्र के विकास की केन्द्रीय शक्ति है। इसको सशक्त व समृद्ध बनाने का अर्थ है प्रगतिशील राष्ट्र का निर्माण करना। महिला सशक्तीकरण का अर्थ है महिला शक्ति का विकास। ताकि वे स्वावलम्बनपूर्वक अपनी शक्तियों का स्वयं तथा राष्ट्र के सर्वांगीण विकास हेतु प्रयोग कर सकें । इसके लिए आवश्यक है कि शत–प्रतिशत महिलाओं को शिक्षित किया जाए।

महिला शिक्षा के उद्देश्य

महिला शिक्षा का मुख्य उद्देश्य महिलाओं में छिपी हुई समस्त क्षमताओं का विकास कर उन्हें सक्षम, समृद्ध, साक्षर, आत्मनिर्भर व ऊर्जावान बनाना है जिससे वे अपनी शक्ति का उपयोग सृजनात्मक कार्यों में करें तथा राष्ट्र के नवनिर्माण में अपना योगदान प्रदान कर सकें। भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन ने कहा था कि शिक्षित महिला के बिना शिक्षित पुरूष हो ही नहीं सकता।

अतः महिलाओं को शिक्षित करना वर्तमान समाज का प्रमुख दायित्व है। महिला शिक्षा के महत्वपूर्ण उद्देश्य निम्न हैं–

1. महिला शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य उन्हें स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर बनाना है।
2. उनको अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करना।
3. संस्कारवान पीढ़ी को जन्म देना तथा पारिवारिक जीवन स्तर उन्नत करना।
4. राष्ट्र के विकास में सहयोग देना।
5. घर के वातावरण को आनन्ददायी बनाना।
6. उच्च जीवन स्तर को महत्व देना।
7. जनसंख्या सम्बन्धी समस्याओं से अवगत कराकर उनके निराकरण में सहयोग प्रदान करना।
8. सामाजिक बुराइयों पर रोक।
9. नारी में साहस, निर्भिकता व नेतृत्व शक्ति का विकास करना।
10. बालिका शिक्षा को बढ़ावा देकर समाज की सोच को परिवर्तित करना।
11. समता, ममता, क्षमता कि त्रिवेणी शक्ति को प्रभावी बनाना आदि है।

महिला शिक्षा की समस्याएं

आजादी के 60 वर्षों बाद भी देश में महिला की स्थिति दयनीय है। भारत गाँवों में बसता है, लेकिन शैक्षिक वातावरण के अभाव में गावों में महिला शिक्षा को आज भी प्रोत्साहन नहीं मिलता जिससे समाज का विकास आज भी अवरूद्ध हुआ प्रतीत होता है। नारी शिक्षा के समक्ष कई समस्याएँ हैं:

1. जनसंख्या वृद्धि : भारत में जनसंख्या वृद्धि एक ज्वलन्त समस्या है। यहां के पुरूष प्रधान समाज में महिला गौण रह जाती है। पुत्र प्राप्ति की चाह में स्त्री का अनुपात घटता जाता है । पुत्र प्राप्ति होने पर लड़कियों के साथ उपेक्षित व्यवहार किया जाता है जिससे बालिका के शिक्षा, रहन–सहन पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ता है।

2. आर्थिक समस्याएं : देश में गरीबी के कारण लगभग 33 करोड़ लोग भूखे सोते हैं जिन्हें दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं होती है। आर्थिक कमजोरी के कारण एक किसान अपनी बालिका को शिक्षा दिलाने की हिम्मत नहीं कर पाता है।

3. सामाजिक व्यवस्था : भारत कृषि प्रधान देश है। यहां अधिकतर लोग दो वक्त की रोटी के लिए अपने बच्चों को खेती व घर के कार्यों में लगा देते हैं। इससे सही समय पर बालिका को शिक्षा नहीं मिल पाती है।

4. नारी शोषण : सामाजिक विकृतियों के कारण चारो तरफ हाहाकार मचा हुआ है। आज नारी अपने आपको असहाय व असुरक्षित महसूस करती है। आए दिन छेड़छाड़, बलात्कार, अत्याचार, जबरन देह शोषण की घटनाएं खुले चौराहे पर होने लगी हैं। इससे सभ्य परिवार के लोग अपनी लड़कियों को विद्यालयों में नहीं भेजते हैं।

5. दहेज प्रथा :यह वर्तमान समय की एक ज्वलन्त समस्या है। आए दिन कोई न कोई महिला प्रताड़ित होकर आत्म हत्या कर लेती है। इस दहेज रूपी कलंक से अभिभावकों की सोच प्रतिकुल होती जा रही है।

6. भाई बहनों का पालन पोषण : ज्यादातर गावों में गरीब परिवार के लोग बच्चों को घर पर छोड़ काम पर चले जाते हैं। परिवार में लड़कियों को छोटे भाई बहनों के पालन पोषण के लिए घर पर रखा जाता है। इससे बालिकाएं शिक्षा से वंचित रह जाती हैं।

7. सकारात्मक दृष्टिकोण का अभाव : महिलाएं पढ़ लिख कर क्या कर लेगी, घर तो पुरूष को ही चलाना है, समाज की ऐसी मानसिकता के कारण भी लड़कियों को विद्यालय नहीं भेजा जाता है।

8. शिक्षा का महंगा होना : भारत सरकार ने प्राथमिक शिक्षा भले ही निःशुल्क कर दी हो लेकिन उच्च स्तरीय कोर्स कराना एक सामान्य परिवार के लिए आज भी बहुत मुश्किल है। इसलिए लड़कियों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता।

9. घरेलू कामकाज का बोझ : समाज में एक मानसिकता आज भी बनी हुई है कि "लड़कियाँ पराया धन हैं"। इसलिए माता पिता लड़कियों पर घरेलू कार्य सीखने के लिए दबाव डालते हैं। इससे बालिका की शिक्षा अवरूद्ध हो जाती है।

10. साक्षरता का अभाव : गाँवों में अधिकतर महिलाएं निरक्षर होने के कारण अपने बच्चों का सही मार्ग दर्शन नहीं कर पाती हैं। इससें बच्चे शिक्षा में पीछे रह जाते हैं। इसी कारण से बालिकाएं अपने अधिकारों से भी वंचित हो जाती हैं।

महिला सशक्तीकरण में शिक्षकों की भूमिका : वर्तमान समय में महिलाओं को सशक्त बनाने में शिक्षकों की भूमिका निम्न प्रकार से महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती हैः

1. आदर्श मूल्यों की स्थापना : वर्तमान पीढ़ी के लिए मूल्यों की शिक्षा नितान्त आवश्यक है। शिक्षक का दायित्व है कि विद्यालयों में विभिन्न शैक्षणिक गतिविधियों के माध्यम से

बालिकाओं में त्याग, प्रेम, आदर्श, समानता आदि मूल्यों की प्रस्थापना करे। इससे बालिकाओं का मनोबल सदैव उच्च बना रहेगा।

2. जन सहभागिता को बढ़ावा देना : बहुत बड़ी संख्या में शिक्षक ग्रामीण क्षेत्रों में लगे हुए हैं। वे यदि गांव के लोगों से विचार विमर्श करें तो वर्तमान समय में नारी की सहभागिता संबंधी ग्रामीण लोगों के सामाजिक सोच को परिवर्तित किया सकता है। इससे समाज जाग्रत होगा।

3. रचनात्मक कार्य को बढ़ावा देने का ज्ञान : शिक्षक बालिकाओं को सतत् नवीन रचनात्मक कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करते रहें। इससे बालिकाओं में वैज्ञानिक रूचि की जागृति होगी।

4. व्यावहारिक जीवन का ज्ञान : शिक्षक यदि सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम के साथ व्यावहारिक जीवन के ज्ञान को भी बालिकाओं तक पहुचाएं तो उनमें आत्मविश्वास व आत्मसम्मान का भाव जागृत होगा। इससे बालिकाओं में नवीन विचारों का संचरण होगा तथा उनका जीवन गतिमान बनेगा।

5. आदर्श कक्षाओं का आयोजन : शिक्षक यदि चाहें तो सप्ताह में एक बार आदर्श कक्षाओं का आयोजन करके "नारी के आदर्श इतिहास की रूपरेखा" को छात्राओं के समक्ष प्रस्तुत कर सकते हैं। इससे वह नारी के नारीत्व, बौद्धिक विकास, आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास की शिक्षा को प्रभावी तरीके से प्रस्तुत कर बालिकाओं के जीवन को नवीन आयाम दे सकेंगे।

6. अधिकारों के प्रति जागरूक बनाकर : ग्रामीण महिलाएं आज भी अपने अधिकारों के प्रति अनभिज्ञ हैं। संविधान में एक नारी के हित की रक्षा हेतु क्या–क्या अधिकार हैं? अधिकारों का उपयोग कैसे किया जा सकता है? राष्ट्र निर्माण में उनकी क्या भूमिका हो सकती है? इन अधिकारों को यदि शिक्षक उत्तरदायित्व पूर्ण तरीके से प्रस्तुत करें तो नारी अबला से सबला बनने को प्रेरित होगी।

7. गुणात्मक शिक्षा को बढ़ावा देना : शिक्षक यदि सकारात्मक अभिवृति रखकर उच्च स्तर की शिक्षा बालिकाओं को प्रदान करेगा तो शिक्षण प्रक्रिया प्रभावी व आनन्ददायी बनेगी। इससे विद्यालयों में बालिकाओं की उपस्थिति अधिक होगी। इससे शिक्षक अपनी विषय वस्तु प्रभावी तरीके से सभी के सामने प्रस्तुत कर पायेगा, जो कि बालिकाओं के सर्वांगीण विकास को पोषित करेगा।

8. सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन : शिक्षक यदि पूर्ण निष्ठावान होकर भारतीय संस्कृति में जिन उत्सवों का आयोजन होता है उनको अपने विद्यालयों में प्रभावी तरीके से आयोजित करें तो वह बालिकाओं में "वसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना को प्राणवान बना सकता है। इससे देश के हर कोने से जुड़ी संस्कृति व नारी के योगदान का पता चलेगा तथा बालिकाएं ऊर्जावान बनी रहेंगी।

9. शिक्षक द्वारा रोजगार मेला का आयोजन : शिक्षक अपने अथक प्रयासों से संभाग स्तर पर रोजगार मेलों का आयोजन कर, यदि छात्राओं को रोजगार दिलाने में प्रयासरत रहे तो इससे महिलाओं का मनोबल उच्चा बना रहेगा। इससे अन्य महिलाओं को भी आत्मनिर्भर व स्वावलम्बी बनने की प्रेरणा मिलेगी।

10. बालिका शिक्षण शिविरों का आयोजन : शिक्षक यदि बालिकाओं के लिए ऐसे शिविरों का आयोजन करे तो इससे समाज में एक स्वस्थ वातावरण का प्रादुर्भाव होगा। स्काउट गाइड जैसे शिविरों के माध्यम से शिक्षक अपने छात्रों को जीवन जीने की कला सीखा सकता है। इससे बालिकाएं अध्ययन एवं अध्यापन की कड़ी से जुड़कर सतत् गतिमान रहेंगी।

11. सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन में सहयोग : राष्ट्र में महिला को पूरा सम्मान मिले तथा वे सशक्त, समृद्ध व समक्ष बने, इसके लिए केन्द्र व राज्य सरकार द्वारा समय–समय पर विभिन्न योजनाओं का संचालन किया जाता है। शिक्षक यदि इन सबकी पूर्ण जानकारी महिलाओं को प्रदान करे तो उन्हें जागरूक बनाया जा सकता है।

उपर्युक्त समस्त बातों के आलोक में नारी की वर्तमान स्थिति, दशा व दीक्षा पर विचार मंथन आवश्यक है। यदि नारी को सम्मान न दिया गया तो आने वाले दिनों में राष्ट्र की तस्वीर क्या होगी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अतः नारी को समक्ष, समृद्ध एवं सशक्त बनाने के लिए समाज को नारी के प्रति सकारात्मक सोच विकसित करना होगा व संवेदनशील बनना पड़ेगा। तभी नारी का सशक्तीकरण सम्भव होगा। गाँधी, जी के शब्दों में कहें तो महिलाएं पुरूषों की प्रतिपूरक हैं। इनकी मानसिक क्षमता पुरूषों के समान कुदरत का उपहार है। यदि इनकी नैतिक शक्ति को आंका जाए तो ये पुरूषों से श्रेष्ठ हैं। यदि इनके प्रति हिंसा पर रोक लगाई जाए तो आने वाला कल महिलाओं का होगा । आवश्यकता है तो महिला सशक्तीकरण को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान करने की।

साक्षर भारत आया

जय सिंह

अंधकार को दूर भगाने, नई रोशनी लाया।
साक्षरता की अलख जगाने, साक्षर भारत आया।

सबको अक्षर ज्ञान मिलेगा, अब सबको सम्मान मिलेगा।
होगा सबका एक ही नारा, शिक्षा है अधिकार हमारा।
कर देगें हम सबको झूठा, नहीं लगेगा कहीं अगूंठा।
जितनी है मजदूरी अपनी, सबसे लेंगे पूरी अपनी।

बाल श्रमिक और बंधुआ युग का, होगा जल्द सफाया।
साक्षरता की अलख जगाने, साक्षर भारत आया।

कथा–कहानी गाना लेकर, अक्षर, जोड़, घटाना लेकर।
पढ़ी–लिखी आबादी देने, शोषण से आजादी देने।
मुक्ति दिलाने हर तनाव से, छुआ–छूत और भेद भाव से।
सब कुछ अच्छा–अच्छा करने, हर सपने को सच्चा करने।

गिनती और ककहरा देकर, सबके मन को भाया।
साक्षरता की अलख जगाने, साक्षर भारत आया।

रमुआ पढ़े किताब घरों में, कलुई करे हिसाब घरों में।
नाना–नानी, काका–काकी अनपढ़ कोई रहे ना बाकी।
अक्षर अब हथियार बनेगा, हर घूघंट का प्यार बनेगा।
पढ़ी–लिखी हो घर की नारी, पुस्तक से हो उसकी यारी।

बेटा बनकर बेटी घर की, अब बदलेगी काया।
साक्षरता की अलख जगाने, साक्षर भारत आया।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षा की अवधारणा

कृष्णकान्त
रघुबीर सिंह

वर्तमान शिक्षा पद्धति कुंठा की एक अजीबोगरीब रेखा गणित बन चुकी है जिसे देखकर हृदय में बहुत पीड़ा होती है। शिक्षा के नाम पर जिन परतंत्रताओं का पोषण किया जा रहा है उनसे एक स्वतंत्र और स्वस्थ मनुष्य का जन्म संभव नहीं है। आज मनुष्य जाति जिस कुरूपता और अपंगता में फंसी है, इसके मूलभूत कारण शिक्षा में ही छिपे हैं। वर्तमान शिक्षा ने प्रकृति से मनुष्य को तोड़ा है और संस्कृति उससे पैदा नहीं हो सकी है, उल्टे पैदा हुई है विकषति। इस विकृति को ही प्रत्येक पीढ़ी नयी पीढ़ियों पर थोपे चली जा रही है। और जब विकृति ही संस्कृति समझी जाती है तथा पाप पुण्य के वश में प्रकट होता है तो वह अत्यंत घातक हो जाता है।

ऐसे में शोषण सेवा की आड़ में खड़ा हो जाता है, हिंसा अहिंसा के वस्त्र ओढ़ती है और विकृतियां संस्कृति के मुखौटे पहन लेती हैं। अधर्म का धर्म के मंदिरों में आवास अकारण नहीं है। अधर्म सीधा और नग्न तो कभी उपस्थित ही नहीं होता। इसलिए यह उचित्त है कि मात्र वस्त्रों में विश्वास न किया जाए। उन वस्त्रों को उघाड़कर देख लेना अत्यंत ही आवश्यक है।

शिक्षा की वास्तविक आत्मा को देखने के लिए उसके तथाकथित वस्त्रों को हटाना ही होगा। क्योंकि अत्यधिक सुंदर वस्त्रों मे जाकर ही अस्वस्थ और कुरूप आत्मा वास कर रही है, अन्यथा मनुष्य का जीवन इतनी घृणा, हिंसा और अधर्म का शिकार क्यों होता?

जीवन के वृक्ष पर कड़वे और विषाक्त फल देखकर क्या गलत बीजों के बोये जाने का स्मरण नहीं हो आता है? बीज गलत नहीं तो वृक्ष पर गलत फल कैसे आ सकते हैं?

संभव है कि उपरोक्त विचारों से सभी की सहमति न हो। पर यहां सहमति का आग्रह भी नहीं है। आग्रह मात्र श्रवण का है। उतना ही पर्याप्त भी है। सत्य को शांति से सुन लेना ही काफी है। असत्य ही माने जाने का आग्रह करता है। सत्य तो मात्र सुन लिये जाने पर ही परिणाम ले आता है। सत्य का सम्यक श्रवण ही स्वीकृति है। शिक्षाशास्त्र से मेरी दृष्टि भिन्न और विरोधी हो सकती है। क्योंकि जो जितना अधिक शास्त्र को जानते हैं, जीवन को जानना उनके लिए उतना ही कठिन हो जाता है। शास्त्र सदा ही सत्य के जानने में बाधक

बन जाते हैं। शास्त्र से भरे हुए चित्त में चिंतन समाप्त हो जाता है। चिंतन के लिए पक्षपात मुक्त चित्त चाहिए। शास्त्र और सिद्धांत पक्ष पैदा करते हैं और तब जीवन और उसकी समस्याओं के प्रति दृष्टि निष्पक्ष और निर्दोष नहीं रह जाती है।

क्या यह संभव नहीं है कि हम जीवन को सीधा देख सकें? क्या यह संभव नहीं है कि हम जीवन को वैसा देखें जैसा कि पहले आदमी ने उसे देखा होगा? क्या हमारा मन उतनी ही सरलता, स्वतन्त्रता और सहजता से जीवन को नहीं देख सकता है?

शिक्षा के समक्ष यह एक अहम समस्या है। शिक्षा व्यक्ति के चित्त को इतना बोझिल, जटिल और बूढ़ा कर दे कि उसका जीवन से सीधा संपर्क छिन्न भिन्न हो जाये तो वह शुभ नहीं है। बोझिल और बूढा चित्त जीवन के ज्ञान, आनंद और सौदर्य, सभी से वंचित्त रह जाता है। ज्ञान, आनंद और सौदर्य की अनुभूति के लिए युवा चित्त चाहिए। शरीर तो बूढ़ा होन को आबद्ध है, लेकिन चित्त नहीं। चित्त तो सदा युवा रह सकता है। मृत्यु के अंतिम क्षण तक चित्त युवा रह सकता है और ऐसा चित्त ही जीवन और मृत्यु को जान पाता है।

लेकिन मौजूदा स्वरूप में शिक्षा तो चित्त को बूढा करती है। यह चित्त को जगाती नहीं भरती है, और भरने से चित्त बूढ़ा होता है। विचार भरने से चित्त थकता, बोझिल होता और बूढा होता है। विचार देना स्मृति को भरना है। यह विचार या विवेक का जागरण नहीं है। स्मृति विवेक नहीं है। स्मृति तो यांत्रिक है। विवेक है चैतन्य । विचार देने की नहीं इसे जागृत करने की जरूरत है। विचार जहां जागृत है, वहां चित्त सदा युवा है। और जहां चित्त युवा हैं वहां जीवन का सतत् संघर्ष है। वहां चेतना के द्वार खुले होते हैं, सुबह की ताजी हवायें भी आती हैं और नये ऊगते सूरज का प्रकाश भी आता है। व्यक्ति जब दूसरों के विचारों और शब्दों मे ही कैद हो जाता है तो सत्य के आकाश में उसकी स्वयं के उड़ने की क्षमता ही नष्ट हो जाती है। लेकिन शिक्षा क्या कहती है? क्या वह विचार करना सिखाती हैं? या कि मात्र मृत और उधार विचार दे कर ही तृप्त हो जाती है? विचार से जीवन्त शक्ति और कौन सी है?

लेकिन मात्र दूसरों के विचारों को सीख लेने से जड़ और मृत भी कोई दूसरी जड़ता नहीं है। विचार संग्रह जड़ता लाता है। विचार संग्रह से विचार और विवेक का जन्म नहीं होता है।

विचार और विवेक के अविर्भाव के लिए यांत्रिक स्मृति पर अत्याधिक बल घातक है। उसके लिए तो श्रद्धा की जगह संदेह सिखाना अनिवार्य है। श्रद्धा और विश्वास बांधते हैं। संदेह मुक्त करता है। लेकिन संदेह से मेरा अर्थ अविश्वास नहीं है क्योंकि अविश्वास तो

विश्वास का ही नकारात्मक रूप है। न विश्वास न अविश्वास। संदेह आवश्यक है। विश्वास और अविश्वास दोनों ही संदेह की मृत्यु है। और जहां संदेह की मुक्तिदायी तीव्रता नहीं है वहां न सत्य की खोज है न प्राप्ति। संदेह की तीव्रता खोज बनती है। संदेह ही प्यास है, संदेह है अभीप्सा। संदेह की अग्नि में ही प्राणों का मंथन होता है और विचारों का जन्म। संदेह की पीड़ा विचार के जन्म की प्रसव पीड़ा है और जो उस पीड़ा से पलायन करता है, वह सदा के लिए विचार के जागरण से वंचित्त रह जाता है।

क्या हममें संदेह है? क्या हममें जीवन के मूलभूत अर्थों और मूल्यों के प्रति संदेह है? यदि नहीं तो निश्चय ही हमारी शिक्षा गलत हुई है। सम्यक् शिक्षा का सम्यक् संदेह के अतिरिक्त और कोई आधार ही नहीं हो सकता। संदेह नहीं तो खोज कैसे होगी? संदेह नहीं तो असंतोष कैसे होगा। संदेह नहीं तो प्राण सत्य को जानने और पाने को आकुल कैसे होगा? इसलिए तो हम सब अत्यंत छिछली तृप्ति के डबरे बन गये हैं और हमारी आत्माएं सतत् सागर की खोज में बहने वाली सरिताएं नहीं है।

यह जड़ता किसने पैदा की है? निश्चित ही शिक्षा ने और शिक्षक ने। शिक्षक के माध्यम से मनुष्य के चित्त को परतंत्रताओं की अत्यंत सूक्ष्म जंजीरों में बांधा जाता रहा है। यह सूक्ष्म शोषण बहुत पुराना है। शोषण के कारण हैं धर्म, धार्मिक गुरू, राजतन्त्र, समाज के न्यस्त स्वार्थ, धनपति और सत्तधिकारी।

शिक्षालयों से गुजर कर स्वयं की प्रतिभा को बचा लेने से अधिक दुरूह कार्य और कोई भी नहीं है। विश्वविद्यालयों ने मौलिक प्रतिभाओं को नष्ट करने में अपनी कुशलता का चरम बिन्दु तो बहुत पहले ही प्राप्त कर लिया है।

मनुष्य की परतंत्रता के लिए ही अनुशासन पर अत्यधिक बल दिया जाता है। विवेक के अभाव की पूर्ति अनुशासन से करने की कोशिश की जाती है। विवेक हो तो व्यक्ति में और उसके जीवन में एक स्वतः स्फूर्त अनुशासन अपने आप ही पैदा होता है। उसे लाना नहीं पड़ता है। वह तो अपने आप ही आता है। लेकिन जहां विवेक सिखाया ही न जाता हो वहां तो उपर से थोपे अनुशासन पर ही निर्भर होना पड़ता है। यह अनुशासन मिथ्या तो होगा ही। क्योंकि वह व्यक्ति के अंतस से नहीं जागता है और उसकी जड़ें उसके स्वयं के विवेक में नहीं होती हैं। व्यक्ति का अंतःकरण तो सदा भीतर ही भीतर उसके विरोध में सुलगता रहता है।

दूसरों से आया हुआ अनुशासन भी परतंत्रता है। ऐसा अनुशासन आज जब जगह–जगह से टूट रहा है तो चिंत्ता व्याप्त हो गई है। ऐसा अनुशासन तो टूटेगा ही। यह तो टूटना ही चाहिए। उसके होने के कारण ही गलत हैं। यह तो अराजकता को बलपूर्वक स्वयं में ही

छिपाये हुए है और बलपूर्वक जिसका भी दमन किया जाता है, एक न एक दिन उसका विस्फोट अवश्यंभावी है। ऐसा अनुशासन व्यक्ति की सारी सहजता और आनंद छीन लेता है और टूटे भी तो व्यक्ति को खण्डहर कर जाता है। बाहर से आया हुआ अनुशासन हर प्रकार से मनुष्य के अहित में है। शिक्षा बाह्यानुशासन से मुक्त होनी चाहिए। उसे तो व्यक्ति में प्रसुप्त विवेक को जगाना चाहिए।

फिर वह विवेक ही आत्मानुशासन बन जाता है। वैसी चर्या में न दमन होता है, न दवाब होता है। वैसी चर्या तो फूलों जैसी सहज और सरल होती है, और जीवन जब स्वः विवेक के प्रकाश में गति करता है तो अराजकता और स्वच्छंदता की सभावनायें ही समाप्त हो जाती हैं। जहां दमन ही नहीं है, वहां अराजकता और स्वच्छंदता के विस्फोट भी असभंव हैं।

प्रश्न उठता है कि क्या हम मनुष्य को स्वतंत्र नहीं बना सकते हैं? स्वतंत्रता में स्वच्छंदता का भय मालूम क्यों होता है? क्योंकि हमने मनुष्य को परतंत्रताओं में दबा रखा है, और उसकी आत्मा सदा से ही उन परतंत्रताओं से छूटने को तडफड़ाती रही है। और जब भी संभव हुआ है, उसने बंधन तोड़े हैं। लेकिन बंधन तोड़ने के प्रयास में आत्मा कटुता, कठोरता और विरोध से भर जाती है। इसके परिणाम स्वरूप वह स्वतंत्र तो नहीं होती, स्वच्छंद अवश्य हो जाती है। स्वतंत्रता सृजनात्मक है, स्वच्छन्दता विध्वंसात्मक। लेकिन स्वच्छन्दता से बचना हो तो स्वतंत्रता के अतिरिक्त कोई मार्ग भी नहीं है।

शिक्षा निश्चय ही ऐसे आधार रख सकती है जो मनुष्य को स्वतंत्र बनाये। राष्ट्र को अनुशासित व्यक्ति नहीं बल्कि स्वतंत्र और स्वंय के विवेक को उपलब्ध व्यक्ति चाहिएं।

शिक्षा अनुशासन देने को नहीं, आत्म विवेक देने को है। उससे जो अनुशासन फलित होगा, वही शुभ और मंगलदायी हो सकता है। क्योंकि उस अनुशासन का फिर शोषण नहीं किया जा सकता।

अध्यापक को चाहिए कि वे बच्चों को विद्रोह सिखाएं। जिस दिन शिक्षा विद्रोह होगी, उसी दिन नयी मनुष्यता का जन्म हो सकता है।

विद्रोह से क्या अभिप्राय है?

विद्रोह का अर्थ है– मूल्यों में क्रांति । निश्चय ही हमारे आज के जीवन मूल्य गलत हैं, अन्यथा मनुष्य के जीवन में यह अशांति, यह अर्थहीनता, यह विभ्रांति क्यों होती? यह

कुरूपता, यह हिंसा, यह ईर्ष्या, यह अधर्म, यह सब क्या अकारण है? नहीं, जीवन मूल्य गलत है और उसका ही यह सहज परिणाम है।

शिक्षक को निद्रा से जागना ही होगा। उसके अतिरिक्त और कोई भगीरथ नहीं है जो कि विद्रोह की गंगा को पृथ्वी पर ला सके। वर्तमान शिक्षक को शिक्षा का रूप बदलना पड़ेगा। उसे शिक्षा व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करने होंगे। उसे ऐसी शिक्षा देनी होगी जो मनुष्य की आत्मा को निर्भार (मार–मुक्त) बनाए। क्योंकि आत्मायें ही परमात्मा के शिखर तक पहुँच सकती हैं। जड़ संस्कारों का भार चेतना के बीज को अंकुरित ही नहीं होने देता, और वह भूमि में दबा दबा ही नष्ट होता रहता है। अतीत से निर्भार हुए बिना व्यक्ति के स्वयं के व्यक्तित्व का अंकुरण हो ही नहीं सकता है। अतीत की जकड़ ढीली हो तो ही मनुष्य में विकास होता है। अतीत तो सीढ़ी है जिस पर से गुजर कर जाना है। उसे सिर पर लिए फिरना समझदारी नहीं है।

आज की शिक्षा भय सिखाती है। शिक्षा प्रलोभन सिखाती है। शिक्षा ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा सिखाती है। शिक्षा महत्वाकांक्षा के ज्वर में दीक्षा देती है। ऐसी शिक्षा ज्ञान की प्रसारक कैसी होगी? ऐसी शिक्षा मुक्तिदायी कैसे होगी? ऐसे मनुष्य स्वस्थ कैसे होगा? यह तो घातक रोगों का प्रसार है। यह ज्ञान का प्रसार तो नहीं है, यह तो अज्ञान का ही प्रसार है।

भय से अधिक भयानक और कोई बीमारी नहीं है। जीवन में भय से अधिक भयभीत होने को और क्या है? भय तो प्राणों को लकवा ही मार देता है। भय तो विद्रोह की समस्त क्षमता को ही नष्ट कर देता है। यह परिवर्तन को असंभव बना देता है। भय ज्ञात से बांध देता है और अज्ञात की सब यात्राएं बंद हो जाती हैं। जबकि जीवन में जो भी जानने और पाने योग्य है वह सब अज्ञात है।

परमात्मा अज्ञात है। सत्य अज्ञात है। सौंदर्य अज्ञात है। प्रेम अज्ञात है। किंतु भयभीत चित्त तो भय के कारण ज्ञात से चिपटा रहता है। वह तो लीक को कभी छोड़ता ही नहीं। वह तो परिचित्त पटरियों पर ही दौड़ता रहता है। वह यंत्रवत हो जाता है और उसकी गति कोल्हू के बैल से भिन्न नहीं होती है।

शिक्षा भय सिखाती है –असफलता का भय और साथ ही देती है प्रलोभन। सम्मान का प्रलोभन, पद का प्रलोभन, प्रतिष्ठा का प्रलोभन, सफलताओं और पुरस्कारों का प्रलोभन। प्रलोभन भी भय के सिक्के का ही दूसरा पहलू है। इस भांति व्यक्ति की चेतना, भय और लोभ से भर–भर जाती है। यहां ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा की अग्नि जलाई जाती है, महत्वाकांक्षा

का ज्वर जगाया जाता है। फिर इन सब विवर्तों में जीवन नष्ट हो जाता हो तो कोई आश्चर्य नहीं है।

ऐसी शिक्षा खतरनाक है । शिक्षा तो वह है जो अभय सिखाये, अलोभ में प्रतिष्ठा दे, साहस दे और विद्रोह की शक्ति दे, अज्ञात की चुनौती को मानने की हिम्मत दे। ईर्ष्या और प्रतिस्पर्धा नहीं, प्रेम सिखाये । महत्वकांक्षा की ज्वर ग्रस्त गति नहीं, वरन् सहज, स्वतः स्फूर्त विकास दे। लेकिन यह तो तभी होगा जब हम प्रत्येक व्यक्ति की निजता की अद्वितीयता को स्वीकार करेंगे। किसी की किसी से भी तुलना आधारभूत भूल है। तुलना से स्पर्धा पैदा होती है। न कोई किसी से आगे है न पीछे। न कोई किसी से ऊपर है , न नीचे । प्रत्येक वही है जो वह है और प्रत्येक को वही होना है। आदर्शों की सिखावन यह नहीं होने देती है। बच्चों को कहा जाता है, राम जैसे बनो, बुद्ध जैसे बनो, गांधी जैसे बनो। इससे भूल भरी बात और क्या होगी। क्या कोई किसी और जैसा बन सकता है, या कभी बन सका है?

आदर्श सिखाने की आवश्यकता नहीं है और न ही किसी का अनुसरण सिखाने की जरूरत है। व्यक्ति का निज व्यक्तित्व पूर्णता को कैसे प्राप्त हो, इस ओर ही सारे प्रयास केन्द्रित होने चाहिए और तभी महत्वकांक्षा से मुक्ति होगी और ईर्ष्या के ज्वर से छुटकारा मिल सकेगा और एक ऐसा समाज निर्मित हो सकेगा जो कि समता और शान्ति को उपलब्ध हो सके। महत्वकांक्षा से मुक्त समाज ही वर्गहीन और शोषण शून्य हो सकता है।

क्या ऐसी शिक्षा नहीं हो सकती है जो कि महत्वकांक्षा पर आधारित न हो? क्या गणित या संगीत इसलिए सीखा जाना चाहिए कि उन्हें सीखने वाले दूसरे साथियों से आगे निकल सकते हैं? क्या गणित के प्रेम से ही गणित और संगीत के आनंद से ही संगीत नहीं सीखा जा सकता है? वस्तुतः संगीत तभी सीखा जा सकता है और उसकी गहराईयां तभी स्पर्श की जा सकती हैं जब संगीत से ही प्रेम हो, किसी अन्य से प्रतिस्पर्धा नहीं।

प्रतिस्पर्धापूर्ण मन संगीत को क्या जानेगा? प्रतिस्पर्धा तो विसंगती है। संगीत को उन्होने ही जाना है जो संगीत में डूबे हैं प्रतिस्पर्धा की दौड़े मे नहीं । दौड़ने और डूबने में विरोध है। दौड़ना तनाव है, डूबना विश्रांती है। दौड़ ज्वर है वह स्वयं के बाहर ले जाती है। डूबना स्वास्थय है, क्योंकि डूबकर व्यक्ति स्वंय की ही आत्यंतिक गहराईयों में प्रतिष्ठा पाता है। विद्या तो डूबने की कला है और जो दोड़ना सिखाती है वह अविद्या कहलाता है।

वृद्धावस्था में भी रहें चुस्तदुरूस्त

राजीव गुप्ता

हम सभी जानते हैं कि यह जीवन नाशवान है। एक दिन हर किसी की मृत्यु होनी है और यह मिट्टी का शरीर मिट्टी में ही मिल जाना है। मृत्यु एक चुनौती की तरह हमेशा हमारे चिकित्सा वैज्ञानिकों के सामने रही है। मनुष्य के शरीर में न जाने ऐसी कौन सी ऊर्जा है जिसके निकलते ही हमारे सांसों की डोर टूट जाती है। इस सत्य को बहुत कोशिशों के बाद भी कोई समझ नहीं पाया है। फिर भी चिकित्सा वैज्ञानिकों के भगीरथ प्रयासों द्वारा इतना तो संभव हुआ है कि मनुष्य की औसत आयु पहले से कहीं अधिक हो गई है। अब पहले की अपेक्षा वह वृद्धावस्था में भी चुस्तदुरूस्त रह सकता है।

अधिक उम्र तक स्वस्थ्य व चुस्तदुरूस्त बने रहने के लिए वृद्धावस्था में भी मनुष्य का क्रियाशील रहना, उसे पारिवारिक व सामाजिक सहयोग मिलना अति आवश्यक है। इसके अलावा खानपान की आदतों, आर्थिक स्थित व मानसिक सोच का भी आपकी उम्र व स्वास्थ्य पर बहुत असर पड़ता है। यदि आप भी वृद्धावस्था में स्वस्थ्य एवं चुस्तदुरूस्त बने रहना चाहते हैं तो निम्नलिखित बिन्दुओं पर गंभीरता पूर्वक मनन करें:

❖ युवावस्था से ही हमें खानपान में सयंम रखना चाहिए। चालीस साल की उम्र के बाद तो तली हुई वस्तुओं, फास्ट फूड, मिर्च–मसाला, खटाई, अधिक चीनी आदि एकदम से कम कर देनी चाहिए। जिससे वृद्धावस्था में होनेवाले मोटापे, उच्च रक्तचाप, मधुमेह एवं हृदय रोग आदि से बचा जा सके।

❖ अपने वजन पर शुरू से ही नियंत्रण रखें, क्योंकि मोटापा जोड़ो कि बीमारी के साथ–साथ अन्य कई बीमारियों को भी अपना मित्र बड़ी आसानी से बना लेता है, जो कि आपके स्वास्थ्य के साथ पूरी तरह से दुश्मनी निकालती हैं।

❖ खाने में सलाद, हरी सब्जियां, अंकुरित अनाज, मौसमी फल आदि फाइबर युक्त आहार को प्राथमिकता दें। ये आपको हृदय रोग, मधुमेह एवं कैंसर जैसे रोगों को बचाने में मदद करेंगे और आप वृद्धावस्था में भी अन्य लोगों से अधिक स्वस्थ रह रहेंगे।

❖ वैसे तो शाकाहारी होना ही बेहतर है, क्योंकि शाकाहारी व्यक्ति मांसाहारी की तुलना में अधिक स्वस्थ रहता है एवं लंबी आयु तक जीता है। फिर भी अगर आप मांस का सेवन करते ही हैं तो रेडमीट का सेवन कम से कम करें।

❖ वृद्धावस्था में प्रायः शरीर में कैल्शियम की कमी हो जाती है, जिससे ऑस्टियोपोरोसिस रोग होने की संभावना रहती है। इस रोग में हड्डियां कमजोर हो जाती हैं और जरा सा

दवाब पड़ने से ही टूट जाती है। इस रोग से बचने के लिए नियमित रूप से एक गिलास मलाई रहित दूध लें।

❖ विभिन्न रोगों से बचे रहने के लिए मनुष्य का क्रियाशील बने रहना अति आवश्यक है। इसके लिए सुबह उठ कर, नित्यकर्मों से निवृत्त होकर नियमित रूप से व्यायाम करना चाहिए।

❖ शराब, तंबाकू, सिगरेट, बीड़ी या किसी अन्य नशे की आदत बिल्कुल मत डालिए।

❖ बच्चों को अच्छी परवरिश, अच्छी शिक्षा, लाड़–प्यार देने के साथ–साथ उन्हें ऐसे संस्कार दें जिससे वे बुढ़ापे में उनका संबल बन सकें। निश्चित ही बेटे–बहुओं का आपके प्रति सम्मान, प्यार व देखरेख आपको प्रसन्नचित्त व स्वस्थ रखेगी।

❖ हर हाल में अपने भविष्य की चिंता करें। इसके लिए शरीर में यथासंभव शक्ति रहते अपने आपको आर्थिक रूप से सुरक्षित कर लें, क्योंकि समय पर रूपए–पैसे ही काम आते हैं।

❖ हमेशा खुश रहें, जिससे आप मानसिक तनाव से मुक्त रहेंगे। इसके लिए आप खुद को किसी कार्य में व्यस्त रखें, पढ़े–लिखें या अपनी कोई हॉबी पूरी करें। इससे आपको आत्मसंतुष्टि मिलेगी जो आपके तनाव को कम करेगी।

❖ व्यर्थ के वाद–विवाद, लड़ाई–झगड़े एवं कोर्ट कचेहरी के चक्कर में कभी न पड़े। इससे आपकी सारी उम्र मुकदमा लड़ते ही बीत जाएगी, वैमन्स्य बढ़ेगा और आर्थिक हानि भी होगी।

❖ कुछ विटामिंस जैसे ई, ए, सी एवं सेलेनियम, कॉपर, जिंक व मैग्नीज आदि खनिज तत्व वृद्धावस्था में होने वाले परिवर्तनों को रोकते हैं एवं अन्य रोगों से बचाव भी करते हैं। अतः अपना खानपान एकदम संतुलित रखें जिससे आपके शरीर में आवश्यक पोषक तत्वों की कमी न हो सके। ये तत्व मौसमी फलों, सब्जियों व अनाजों में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।

❖ आप कभी भी अपने आप को व्यर्थ न समझें। यह न भूलिए कि संसार के सभी महत्वपूर्ण व्यक्ति अन्त तक अपने कार्य में पूरे मनोयोग से लगे रहे।

❖ अपनी हरेक शारीरिक व मानसिक परेशानी के लिए जल्द से जल्द अपने चिकित्सक से अवश्य मिलें या अपने परिवार के सदस्यों से विचार–विमर्श करें। इससे समय रहते ही आपकी समस्या का समाधान हो जाएगा।

❖ नई पीढ़ी के सदस्यों के साथ ताल–मेल रखें। उनके विचारों को भी जाने और यदि ठीक हों तो उनका स्वागत करें।

❖ हालांकि वृद्धावस्था में पूरी सावधानी के बाद भी कुछ परेशानियां जैसे उच्च रक्तचॉप, मधुमेह, प्रोस्टेट ग्रन्थि का बढ़ना, कान से कम सुनाई देना व मोतियाबिंद आदि बीमारियां हो सकती हैं, फिर भी वृद्धावस्था को अभिशाप न माने और जीवन पूर्ण उत्साह व खुशी के साथ जीएं।

हमारे लेखक

हंसराज पाल
आचार्य, शिक्षा संस्थान,
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर

मोहनलाल ठाकुर
शोध छात्र, शिक्षा संस्थान,
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर

अनूपी समैया
प्राचार्य, बी.टी. कॉलेज सागर, म.प्र.

लक्ष्मण शिंदे
रीडर. शिक्षा अध्ययनशाला
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय
इन्दौर, मध्य प्रदेश

महेन्द्र पाटीदार
शोध अध्येता,
शिक्षा अध्ययनशाला
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय
इन्दौर, मध्य प्रदेश

जय सिंह
निदेशक
जन शिक्षण संस्थान,
नरसिंहपुर (म.प्र.)

कृष्णकांत
प्रवक्ता, माता हरकी देवी महिला शिक्षा महाविद्यालय,
औढ़ां (सिरसा)– 125077

रधुबीर सिंह
प्रवक्ता, माता हरकी देवी महिला शिक्षा महाविद्यालय,
औढ़ां (सिरसा)– 125077

राजीव गुप्ता
5/11, बाग कूंचा
फर्रूखाबाद
उत्तर प्रदेश, 209625

हरीश चन्द्र चौबीसा
सहायक आचार्य
लोकमान्य तिलक शिक्षक प्रशिक्षक महाविद्यालय
डबोक – 313022, उदयपुर (राज.)

भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ

कार्यकारिणी समिति

अध्यक्ष
प्रो. भवानीशंकर गर्ग

उपाध्यक्ष
श्री सुधीर चटर्जी
श्री ए.एच. खान
डा. एल. राजा
डा. एम.एस. राणावत
सुश्री निशात फारूख

महासचिव
श्री के.सी. चौधरी

कोषाध्यक्ष
डा. मदन सिंह

संयुक्त सचिव
श्री अनोखी लाल भार्गव

सह-सचिव
श्री एस.सी. खण्डेलवाल
डा. पी.ए. रेड्डी
डा. ओ.पी.एम. त्रिपाठी
श्रीमती इन्दिरा पुरोहित

सदस्य
श्री दुर्लभ चेतिया
श्री मृणाल पन्त
डा. वी. रेघु
डा. एस.एल. शर्मा
प्रो. के.आर. सुशीले गौडा
श्रीमती राजश्री बिस्वास
प्रो. सरोज गर्ग
डा. उषा राय

सहयोजित सदस्य
श्री एच.सी. पारीख
प्रो. एस.वाई. शाह
श्री रामेश्वर नीखरा
श्री प्रफुल्ल नागर
डा. डी. उमा देवी
श्री हरीश एस
डा. निर्मला नुवाल

पोस्टल रजिस्ट्रेशन नं. डी.एल.(सी)-01/1158/10-12
प्रौढ़ शिक्षा नवम्बर 2011, आर.एन.आई. 4551/57

"शिक्षा की महत्ता सर्वोपरि है। राष्ट्र–निर्माण जिन महिलाओं और पुरूषों से होता है, उनके व्यक्तित्व का निर्माण शिक्षा करती है।"

पं. जवाहरलाल नेहरू

स्वत्वधिकारी भारतीय प्रौढ़ शिक्षा संघ के लिए डा. मदन सिंह द्वारा 17-बी इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, नई दिल्ली-2 से प्रकाशित, सम्पादित और उनके द्वारा मैसर्स-ग्राफिक वर्ल्ड, 1686, कूचा दखिनी राय, दरियागंज, नई दिल्ली-2 से मुद्रित ।